इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय
अनुवाद अध्ययन एवं प्रशिक्षण

एम टी टी - 19

अनुवाद की राजनीति

इकाई 2 राष्ट्रवाद, विचारधारा : भारतीय आधुनिकतावाद और विश्व साहित्य

इकाई की रूपरेखा

2.0 उद्देश्य

2.1 प्रस्तावना

2.2 आधुनिकतावाद : विनियोजन और विश्व साहित्य
- 2.2.1 एज़रा पाउंड और एशियाई साहित्य का अनुवाद
- 2.2.2 डब्ल्यू.बी. यीट्स, अनुवाद और इरिश राष्ट्रीयता

2.3 आधुनिकतावादी अनुवाद और विश्व साहित्य

2.4 आधुनिकतावादी अनुवाद में पर्वती विकास

2.5 सारांश

2.6 अभ्यास के लिए प्रश्न

2.7 शब्दावली

2.8 कुछ उपयोगी पुस्तकें

2.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप जानेंगे :

- आधुनिकतावाद और विश्व साहित्य के मुख्य लक्ष्यों की तालिका बनाना;
- साहित्यिक विनियोजन और साहित्य पाठों के बीच संबंधों की व्याख्या करना;
- विनियोजन की प्रक्रिया के रूप में अनवुाद को कैसे देखा जाए, इसको रेखांकित करना, और
- साहित्य शैली के रूप में अनुवाद के विकास में एज़रा पाउंड और डब्लू.बी. ईट्स की भूमिका को व्याख्यायित करना।

2.1 प्रस्तावना

पिछले अध्याय में आपने राष्ट्रीयता के बारे में सीखा है और भारतीय राष्ट्रीयता से संबंधित बहस के बारे में सीखा है। आपने यह भी सीखा कि राष्ट्रीयता और सांस्कृतिक निर्माण कैसे साथ-साथ चलते हैं। किस प्रकार सांस्कृतिक, अतीत, विशेषतः संस्कृत साहित्य, राष्ट्रीय जुड़ी। आपने सीखा कि कैसे संस्कृत ग्रंथों के भारतीय भाषाओं में अनुवाद को राष्ट्रीय के कार्यों से जोड़ा गया।

इस इकाई में मुख्य रूप से हम यूरोपीय संदर्भ में आधुनिकतावाद पर प्रकाश डालेंगे। साहित्य का विनियोजन कैसे होता है और सिर्फ अनुवाद को सांस्कृतिक विनियोजन के क्रिया-कलाप के रूप में कैसे देखा जा सकता है। हम विश्व-साहित्य के बारे में भी जानेंगे, विश्व-साहित्य क्या है और किस प्रकार अनवुाद का अनुशासन के रूप में विश्व साहित्य में आपसी आदान-प्रदान के रूप में उभरा। हम अनुवाद सिद्धांत की भी चर्चा करेंगे और कई अनुवादकों ने किसी पाठ के अनुवाद हेतु विविध उपागम अपनाएं हैं लक्षित पाठकों को ध्यान में रखकर एवं तत्कालीन झुकाव को देखते हुए। इसके साथ ही, हम कुछ नव-विकसित अनुवाद सिद्धांत की चर्चा विश्व-साहित्य के संदर्भ में करेंगे।

2.2 आधुनिकतावाद : अनुवाद, विनियोजन और विश्व-साहित्य

अब हम यहां से शुरू करते हैं कि आधुनिकता है क्या? आधुनिकतावाद एक सांस्कृतिक आंदोलन है जो पि चम में उन्नीसवीं सदी के अंत में और बीसवीं सदी के प्रारंभ में शुरू हुई। इस आंदोलन के प्रस्तावों ने समाज के पारंपरिक संरचनाओं को अस्वीकार किया और उत्तर-औद्योगिक आंदोलित विश्व में नए विचारों को समाहित करने के लिए तर्क किया। कला के क्षेत्र में भी एजरा पाउंड जैसे लोगों ने भी प्रस्तुत किया कि, 'कुछ नया करो'। फिर भी आधुनिकतावाद पुराने का पूरी तरह से अस्वीकार नहीं था। यह एक विरोधाभासी स्थिति भी जहां नए का डर समाज में पुराने विचारों के मृत्यु की खुशी के साथ सह-अस्तित्व में रही। कुछ विद्वान आधुनिकतावाद में 20वीं शताब्दी के विकास को उत्तरआधुनिकतावाद कहते हैं। किंतु कुछ इसे एक ही आंदोलन की दो अवस्थाएं मानते हैं। आधुनिकतावादी साहित्य आधुनिकतावाद की साहित्यिक शैली की एक प्रवृत्ति है। आधुनिकतावादी साहित्य ने उन्हीं सौंदर्य समस्याओं को संबोधित किया जिसे समकालीन आधुनिक कला जैसे पेटिंग के असाहित्यिक रूपों ने मूल्यांकित किया। जेट्रड स्टेन के अमूर्त लेखन की तुलना आधुनिक पेंटर पाब्लो पिकासो से की जाती है।

संस्कृति का विनियोजन मुख्य रूप से समाज के उस अवस्था को इंगित करती है जिसमें कि एक समाज, दूसरे समाजों से सांस्कृतिक तत्वों को लेते हुए, उन सांस्कृतिक तत्वों में परिवर्तन करती है जैसा कि उनके सामाजिक-सांस्कृतिक संदर्भ होते हैं। यह ध्यान देना जरूरी है कि परिवर्तन या बदलाव जो होता है वह वजहों से होता है, एक मानव-शक्ति की वजह से या दूसरे गृहीत समाज के ऐतिहासिक स्थितियों के प्रभाव की वजह से होता है। अनुवाद के कार्य में पात्र, नक्शा या स्थानीय चीजों के वर्णन में भी बदलाव करना होता है। रामायण को स्थानीय या ग हीत समाज की आवश्यकताओं या विशिष्टताओं के अनुरूप विनियोजित किया जाता था। यह प्रक्रिया सांस्कृतिक विनियोजन कही जाती है, और अनुवाद के संदर्भ में, इसे हम विनियोजन की प्रक्रिया कह सकते हैं।

विश्व साहित्य मुख्यतः पूरे विश्व के साहित्य को परिभाषित करता है जैसे कि अफ्रीका, एशिया, अरब देश, आस्ट्रेलिया आदि। जोहान वोल्फगैंग वॉन गोथे ने 'वेल्टलिटरे टुर' शब्द बनाया। सन् 1827 में अन्य देशों के उपलब्ध पाठों के संदर्भ में, विशेषतः भारत के संस्कृत पाठों के संदर्भ में। कार्लमार्क्स और फ्रेडरिक एंजेल्स ने सन् 1848 के कम्यूनिस्ट मेनिफेस्टो में मध्यवर्गीय साहित्यिक प्रका ान का इसे 'विश्वव्यापी चत्रि' नाम दिया। एक नई किताब साहित्य क्या है? (2003) में डेविड डामरोश ने विश्व साहित्य के समकालीन उद्देश्य और उसके प्रयोजन को देखा है। लेखक पाठों को राष्ट्रीय से अंतरराष्ट्रीय संदर्भ में बदलाव के रूप देखता है। वे अनुवाद की भूमिका को विविध भाषा और संस्कृति में उपलब्धता के रूप में भी देखते हैं।

2.2.1 एज़रा पाउंड और एशियाई साहित्य का अनुवाद

इस खंड में हम प्रसिद्ध अमेरीकी कवि एज़रा पाउंड और उनके अनुवाद के क्षेत्र में योगदान पर चर्चा करेंगे। हम इस विषय पर चर्चा करेंगे कि किस प्रकार एज़रा पाउंड ने अंग्रेजी कविता के 'इमे जिज्म' अर्थात् 'बिंबवाद' को निर्मित करने के लिए चीनी कविता का अनुवाद के माध्यम से नियोजन किया। एज़रा, हेली, इडाहो में 1885 में पैदा हुए थे। उन्हें आधुनिक सौंदर्यवादी कविता लेखने के क्षेत्र में योगदान हेतु जाना जाता है। उन्हें अमेरीकी पाठकों के समक्ष डब्ल्यू.बी. ईट्स, रॉबर्ट फ्रॉस्ट, विलियम कार्लोस, मैरीन मूरे, जेम्स जोस, अर्नेस्ट हेमिंग्वे और विशेषतः टी.एस. इलियट से परिचति कराने हेतु जाना जाता है। उनका कविता के क्षेत्र में अपना योगदन 'बिंबवाद' की स्थापना से है, एक आंदोलन जिसने कविता लेखन के संकेत चीनी और जापानी कविता से लिया। बिंबवाद स्पष्टता, संक्षिप्तता, भाषिक लघुता और पारंपरिक तुक और छंद त्यागने पर बल देता है।

एज़रा पाउंड ने अपनी 14 चीनी कविता संग्रह को 'कैथे' शीर्षक से प्रकाशित किया। यद्यपि वह पहले व्यक्ति थे जिन्होंने मुख्य रूप से मुहावरे और चीनी कविता बिंब को ऐंग्लो अमेरिकी बिंब में प्रयोग किया। सघन बिंब, मौखिक समाहार और प्रकृति के साथ रहस्यात्मक संबंध कविता लेखन का नया प्रतिमान बना। समकालीन कवि हेडन कैरथ 1889 में चीनी कविता को सांस्कृतिक परंपरा के रूप में बदलाते हैं जहां 'सब कुछ एक बार में हो सकता है, कोई विवाद नहीं हो सकता'। फिर भी विदेशी पाठकों के लिए चीनी कविता का प्रमुख लक्षण बिंबवाद हो सकता है,

इसका प्राकृतिक घटनाओं और वस्तुओं का स्वयं संकेंद्रण (फोकस) हो सकता है। एज़रा पाउंड के योगदान को टी.एस. एलियट द्वारा स्वीकार किया गया था, 'पाउंड हमारे समय में चीनी कविता के खोजकर्त्ता रहे हैं'। कैथे ने भी अंग्रेजी कविता के बदलाव में कुछ योगदान किया। पाउंड का पहला बिंबवादी संग्रह, *डेस इमेजिस्टेस* (1914) मुख्यतया चीनी कविता के मॉडल पर आधारित था जिसे 19वीं शताब्दी के चीन विद्या विद्-हर्बर्ट जाइल्स ने प्रस्तुत किया था।

पाउंड ने अर्नेस्ट फेनोलोसा की चीनी कविताओं की पांडुलिपि उनकी विधवरा मैरी से 1913 के अंत में प्राप्त की और उन पर काम करना शुरू किया एक वर्ष बाद। उनके नोटबुक में 150 कविताएं हैं जिसमें फेनोलोसा ने चीनी कविता के जापानी विद्वानों की सहायता से अनुवाद किया था। उन 150 कविताओं में से, 48 लीबेके द्वारा थीं जो उनका जापानी नाम था, उस समय फेनोलोसा और पाउंड के लिए उनका नाम था रिहाकु। पाउंड ने लीबेके।। कविताओं को अपने संग्रह में स्थान दिया। कैथे की सभी कविताएं अलगाव, अकेलापन और युद्ध के पृष्ठपटल से दूरी पर थीं। कविताएं सैनिकों को पुरानी यादों में, सरकारी कर्मचारियों, कवियों, पत्नियों और गणिकाओं में प्रसिद्ध थीं। उनका अपना अंग्रेजी में चीनी कविताओं का अनुवाद स्थापित परंपरा से हटकर था। जिसने कि स्रोतभाषा के गहरे ज्ञान के पूर्व शर्त को कमजोर किया। जब अर्नेस्ट फेनोलोसा के नोटबुक से उन्होंने कविताओं का अनुवाद शुरू किया तो उन्हें पूरी तरह से चीनी भाषा का ज्ञान नहीं था। फिर से पाउंड ने यह सिद्ध किया कि सौंदर्यात्मक खुशी और सांस्कृतिक प्रभाव दोनों का परिणाम प्राप्त किया जा सकता है बिना मूल भाषा ज्ञान से जिसके कि पाठ का अनुवाद किया जा रहा है। पाउंड के अनुवाद ने उत्तरवर्ती आधुनिक अनुवादों के लिए आवेग का मार्ग प्रशस्त किया। फिर भी आलोचकों ने स्वयं को परंपरागत दोहरे विरोध मूल से ईमानदारी और मूल से पार्थक्य के बीच सीमित रखा जब वे पाउंड के कार्य का मूल्यांकन कर रहे थे। कई लेख और शोध प्रबंध छपे जिसमें पाउंड के व्याकरणिक त्रुटियों और सहजता को उनके अनुवादों में देखा गया था। *कैथे* पर भी पाउंड के उत्तरवर्ती अनुवाद का प्रभाव था। दूसरे समकालीन जैसे कि विलियम बटलर ईट्स ने अनुवाद को महत्वपूर्ण कौशल के रूप में देखा अपने समय के विशिष्ट मुद्दो को उठाने हेतु एक प्रयास की तरह जैसे कि राष्ट्रीय सौंदर्य ईरिश संस्कृति निर्मित करने के लिए। स्वीवादियों ने जबकि पाउंड को नारी विरोधी लेखक के रूप में देखा जो पुरुषवादी विचार को बढ़ावा दे रहे थे ऐंग्लो अमेरिकन आधुनिकतावाद साहित्यिक रचना के माध्यम से।

कैथे का प्रक्षेपक अभिलक्षण इसका पारंपरिक पाठों के अनुवाद से पार्थक्य में अवस्थित है। शीर्षक पृष्ठ स्पष्ट तौर पर यह बताता है कि कविताएं 'अनुवाद' हैं न कि मूल कविता।

कैथे

एज़रा पाउंड द्वारा अनूदित अधिकतर कविताएं चीनी रिहाक् से है, स्वर्गीय अर्नर फेनोलोसा के नोट से, और प्रोफेसर मोरी और अरिगा के लेखन के साथ आपने प्रारंभिक अनुवाद कार्यों में, पाउंड ने उन्हीं भाषाओं के साथ काम किया जिनके मूल का उन्हें औपचारिक ज्ञान था। उदाहरण के लिए, इटली भाषा में सोनेट्स ऐण्ड बैलेट्स ऑफ गिडो कवलकांति; और इंस्टीगेशन कविता में अर्नाट डेनियल प्रोवेंसी, और एंग्लो सेक्सन के लिए 'दी सिफरर'। रिहाकु और अर्नेस्ट फेनोलोसा को उद्धृत करके, पाउंड स्पष्ट रूप से चीनी भाषा के प्रति अपनी अनभिज्ञता जाहिर करते हैं। पाउंड की पूर्व की चीनी कविता की जानकारी अनुवाद की एक सामूहिक पाठनिर्माण की रूपरेखा खींचती है और यह पाउंड का अपना नया तरीका है किंतु कार्य की अंतिम शृंखला नहीं। पाउंड का अनुवाद आधुनिक समय में एक सामान्य व्यवहार की शुरुआत करती है जो एक या दो लोगों के साथ होती है, जहां एक के पास दोनों भाषाओं की कामचलाऊं जानकारी होती है तथा दूसरे के पास अच्छी साहित्यिक परख। पाउंड का अनुवाद कार्य अनुवादकों को चीनी कविता को प्रचारित करने की बहुत सारी अहमियत देती है और इस सर्जनात्मकता को एक प्रकार का जीवन दान प्रदान करती है जैसा कि वालटर बेंजामिन के द्वारा व्याख्यायित किया गया है।

पाउंड के समय, 1910 में, कार्य क्लीफार्ड बॉक्स और एक जापानी संत सुतोमी इनोयु ने मिलकर एक छोटी सी पुस्तक लिखी 20 चीनी कविताएं। 1921 में एमी लोवेल और फ्लोरेंस ऐस्कोफ ने मिलकर चीनी कविता का अनुवाद फीर फ्लॉवर टेबलेट नाम से किया तथा 1929 में विटर बीनर और कियांग कांम-हु ने मिलकर जेड माउंटेन तैयार किया।

2.2.2 डब्लू.बी. यीट्स, अनुवाद और इरिश राष्ट्रीयता

पिछले खंड में हमने एज़रा पाउंड के अनुवाद के क्षेत्र में योगदान पर चर्चा की। इस खंड में हम प्रसिद्ध इरिश कवि डब्लू.बी. यीट्स पर चर्चा करेंगे, और किस तरह उन्होंने इरि ा राष्ट्रीयता के लिए अनुवाद विनियुक्त किया। डब्लू. बी. यीट्स डबलिन आयरलैंड में सन् 1865 में पैदा हुए। वे एक प्रसिद्ध पेंटर के पुत्र थे, यीट्स जमींदार ऐग्लो इरि ा अभिजात वर्ग से संबंध रखते थे। अपने जवानी से ही वे सेल्टिक पुनरुद्धार में शामिल थे, यह एक आंदोलन था जो आयरलैंड में अंग्रेजी शासन के सांस्कृतिक प्रभाव के विरुद्ध था। उनके लेखन ने ज्यादातर इरि ा मिथक और लोक गीतों से प्रभाव ग्रहण किया। यीट्स गहराई से आयरलैंड की राजनीति में शामिल थे। इंग्लैंड से इसकी स्वतंत्रा के बाद, यीट्स के लेखन में चीजों के प्रति आयरलैंड में निरा ावाद की भावना थी। सन् 1910 के बाद उनके लेखन में एज़रा पाउंड का अत्याधिक प्रभाव था, अपने चेतना और बिंब में वे अधिक आधुनिक थे। किंतु उन्होंने पारंपरिक पद्य रूपों के प्रति अपनी लगाव कभी नहीं छोड़ी। उनमें जीवन पर्याप्त रहस्यवाद में रुचि थी और गूढ़ रहस्य में भी।

विलियम बटलर यीट्स ने अंग्रेजी साहित्य के आधुनिक काल को अनुवाद काल बनाने में मदद की। उन्होंने सोफोकल के किंग ओडियस का 1928 में तथा ओडियस ऐट कोलोनस का 1934 में अनुवाद किया। किंग ओडियर के प्रकाशन काल तक यीट्स अपने आप को एक कवित के रूप में स्थापित कर चुके थे। उन्होंने कविता संग्रह को अनुवाद के प्रारूप में व्यवहार में लाया। उन्होंने दो महत्वपूर्ण पहल संग्रह लिखे, दी टावर और दी विडिंग स्टेयर्स एण्ड अदर पोएम्स, ऐंटीगान और ओडियर ऐट कोलोनस के क्रमशः अनुवाद के साथ। सोफोकल के नाटकों के ये अनूदित कार्य यीट्स के लेबे पूर्व कार्यों के एक भाग के रूप में देखे जा सकते हैं। इन्हें इरि ा राष्ट्रीय संस्कृति और स्थानीय नाट्य रूप निर्माण के साथ भी देखा जा सकता है। उन्होंने अनुवाद को मात्र एक साहित्यिक व्यवहार के रूप में नहीं देखा अपितु सामाजिक सांस्कृतिक के प्रभाव के गहन कार्य के रूप में भी देखा।

यीट्स के इरि ा राजनीति के पूर्व कार्यों ने काफी मात्र में बहस को बढ़ावा दिया। कुछ लोगों ने उन्हें प्रमुख इरिश राष्ट्रवादी समझा या एक उदार मानववादी या व्यक्तिवादी। कुछ लोगों ने उनके विकास को एक राष्ट्रवादी के ऐंग्लो सैक्सन प्रतिक्रियावादी के रूप में बातें करते देखां एडवर्ड ने कहा, 'प्राच्यवाद' का विद्वान, उन्होंने यीट्स को 'पुनर्निवे ाीकरण' का कवि कहा, जबकि कुछ लोगों ने उनके राष्ट्रवाद को खतरे के रूप में देखा क्योंकि उनको रहस्यवाद पर अत्याधिक विश्वास था और गूढ़ रहस्य पर भी। उन्होंने अनुवाद को स्वस्थ्य इरि ा राष्ट्रीय संस्कृति के निर्माण में प्रामाणिक माना। दरअसल, ओडियस रेक्स के इरि ा पटल पर दस वर्ष बाद आने के बाद उन्होंने पुनः उसे ऊपर उठाया और ओडियर नाटकों को अपने जीवन के उच्चतम आद ाों तक पहुंचाया। फिर भी, स्वयं अनुवादक बनने के पूर्व इरि ा पहचान की स्थापना में अनुवाद के महत्व पर चर्चा की। इस संबंध में हम उनके द्वारा लेडी आगस्ट ग्रेगोदी के प्रति प्रयुक्त अतिशयोक्तिपूर्ण प्र ांसा को ले सकते हैं जो लेडी ग्रेमोदी के इरिश लोक कथाओं के अंग्रेजी में रूपांतरण थे। कथा के बारे में वे कहते हैं, लेडी ग्रेमोदी ने कहानियों को 'संसार परिकल्पना को उपहार' के रूप में लिया और उसे वैश्विक संदर्भ में स्थापित किया। यीट्स ग्रेगोदी की प्रशंसा उनके साहित्यिक अनुवाद के लिए करते हैं। वे लेडी ग्रेगोदी के पूर्व अनुवाद से असहमत दिखते हैं और समापन करते हुए कहते हैं कि उनके अनुवाद मूल के सटीक पुनर्निमाण नहीं है बल्कि कथा समाहार की दृष्टि से महत्वपूर्ण है, सटीक विस्तार का चयन और ताल में उपयुक्तता है। वे अनुवाद को साहित्य निर्माण के रूप में लेते हैं जो मूलतः कविता संग्रह से तुलनीय है। इरि ा अनुवादकों के बारे में यीट्स का कहना है - 'इरि ा अनुवादकों ने वस्तुतः कहानी का पुनर्कथन किया है या एक रूप का दूसरे में पुनर्कथन किया है, अंग्रेजी भाषा की सही जानकारी के बिना भी और यह कि 'कुछ कहानियां कल्पना की महान रचना के रूप में मौजूद रहती हैं जब तक कि कोई रचनाओं की बेहतरीन अंशों का आस्वादन न करें।

यीट्स ने अनुवाद को एक व्यवहार के रूप में माना जिसने आधुनिक आयरलैंड में संघर्ष का समाधान गैलिक और अंग्रेजी के बीच निकाला। लेडी ग्रेगोदी के बारे में वे कहते हैं कि उन्होंने मोरिस जैसी सुंदर भाषा का ईजाद किया। इस तरह इरि ा विषयों को उस भाषा में प्रस्तुत करने की चुनौती से विजय पाई। जिसका औपनिवेशिक प्रभुता और स्थानीय सांस्कृतिक विस्थापन का इतिहास रहा है। यीट्स के अनुसार अनुवाद नाटकीय रंग से प्रकरण या पाठ

को नहीं बदलता। यह समकालीन पो ाक में पाठ का दुरुस्त रूप प्रदान करता है। यीट्स ने गैलिक से अनुवाद की समस्या को भी पहचाना। यह अति संवेदन ाील राजनीतिक मामला था। न्यूयार्क 1903-04 के एक भाषण में यीट्स ने लेखक के रूप में उनका गैलिक आंदोलन के प्रभाव को स्मरण किया। वे याद करते हैं कि वे और उनके जैसे लोग जो अंग्रेजी भाषा पर करते थे, आयरलैंड में उनका कोई महत्व नहीं था। एक वर्ष पूर्व, उन्होंने अपने सहयोगी डगलस हाईड से निवेदन किया, जिन्होंने गैलिक लीग की स्थापना मिलकर की और सांस्कृतिक अलगाववादियों के पुनर-आंग्लीकरण के प्रयास का नेतृत्व गैलिक से ज्यादा अपने अनुवाद पर जोर देने हेतु किया। इंग्लैंड में किंग जेम्स के उदाहरण को सामने रखकर यीट्स अनुवाद और राष्ट्रीय साहित्य की स्थापना के संबंध पर जो देते हैं वर्तमान कथन पर बात करते हुए, यीट्स कहते हैं कि आपरिश लोगों को अच्छे साहित्य का निर्माण वर्तमान कथन पर करना चाहिए। अंग्रेजी में पाया गया कि किंग के बाईबिल का कथन और ब्लेक जैसे कवित, तथा बैरोन और रस्किन ने शैली के लिए इसे अपनाया या नकल की। यीट्स के विचार में अनुवाद आधुनिक औरस आपरिश अलग-अलग साहित्य का निर्माण करता है अपेक्षाकृत पारंपरिक सेल्टिक साहित्य के। उन्होंने 'आंतरिक' अनुवाद को भी बढ़ावा दिया, या आयरलैंड के अंदर चलने वाली भाषाओं में काम करने पर बढ़ावा दिया इससे, उनके विचार के अनुसार, आयरलैंड अपने गैलिक मूल से जुड़ा रहेगा और नया बना रहेगा।

ओडियस नाटकों का अनुवाद करते हुए, यीट्स के मन में दूसरा कार्यक्रम था, वह था आपरिश सांस्कृतिक पहचान को आंग्ले सेक्सन प्रभाव के विरुद्ध मजबूत करना, दूसरे देशों की परंपराओं की महत्वपूर्ण कृतियों की संभावित प्रदर्शन के माध्यम से। यीट्स के लिए अनुवाद न सिर्फ साहित्यिक अपितु राजनीतिक कार्य भी था। जब ऐसी थियेटर के लिए यीट्स ओडियस रेक्स का नाट्य प्रस्तुति कर हरे थे, यह इंग्लैंड में व्यभिचार प्रदर्शन की वजह से प्रतिबंधित था। आपरिश श्रोताओं को उपलब्ध कराने की वजह से, यीट्स ने सोचा, आयरलैंड के लोगों को उनकी उदारता पर गर्वान्वित महसूस कराएंगे। किंतु उनके नाट्य प्रदर्शन से पूर्व, इंग्लैंड ने अपना प्रतिबंध हटा लिया और यीट्स नाटक में अपनी रुचि खो बैठे। *ओडियस रेक्स* के अपने अनुवाद पद्धति के बारे में यीट्स कहते हैं, 'मैं पाठकों के लिए नया अनुवाद नहीं करना चाहता हूं, बल्कि घर के सभी सदस्यों के लिए, विद्वान और कामगार बच्चे, उतनी ही आसानी से समझ सकें, जैसे वे राजनीतिक भाषण या समाचार-पत्र के लेख समझते हैं। यह साफ तौर पर दर्शाता है कि यीट्स का अनुवाद कार्य राजनीतिक रंग ले चुका था।

आइए अब एक प्रश्न उठाएं, किस तरह से यीट्स ने अनुवाद को एक साधन या विनियोजन की प्रक्रिया बनाया इसका उत्तर अनुवाद के उद्देश्य पर निर्भर करता है। यीट्स का अनुवाद के प्रति उद्देश्य आयरलैंड के राष्ट्रीय संस्कृति का निर्माण तथा उसको मजबूती प्रदान करना था, अंग्रेजी के विरोध और सहयोग के साथ। अनुवाद के माध्यम से लोग या प्राचीन को आपरिश राष्ट्रीय संस्कृति के साथ समायोजित करना था, और इस प्रक्रिया में, एक आधुनिक संस्कृति का निर्माण भी करना था। दूसरे शब्दों में, यीट्स का अनुवाद कार्य पूर्ण रूप से राजनीतिक कार्य था।

2.3 आधुनिकतावादी अनुवाद और विश्व साहित्य

पिछली चर्चा के आधार पर, क्या आप एक तालिका बना सकते हैं जिसमें कि आधुनिक अनुवाद ने विश्व साहित्य में भूमिका निभाई। विश्व साहित्य के इकाई (पाठ्यक्रम-6 विश्व साहित्य का अनुवाद और विचार) में हमने पहले ही विश्व साहित्य के महत्वपूर्ण लक्षणों की चर्चा की है कि विश्व साहित्य क्या है और वे प्रक्रियाएं जिनसे कि इसका अर्थ समय-समय पर बदलता रहा है। आइए अब हम इस पर ध्यान केंद्रित करें कि आधुनिकतावाद और विश्व साहित्य अनुवाद के माध्यम से जुड़े। यहां तक कि एज़रा पाउंड से पूर्व, एशियाई साहित्य की चर्चा विश्व-साहित्य में की गई, विशेषतः प्राचीन काल के चीनी और संस्कृत साहित्य की। जर्मन लेखक गोथे के लेखन में यह प्रामाणिक था। फिर भी, एज़रा पाउंड से, एशियाई साहित्य की उपस्थिति का स्वरूप और उसकी प्रकृति गोथे के साथ तुलना करने पर बदला। पाउंड के मामले में, दो चीजें महसूस की गई, पहला, पाउंड की अनुवाद पद्धति (कैथे) ने अंग्रेजी भाषा में कविता की एक नई शैली की शुरुआत की। इस शैली का उस काल में काफी असर हुआ। दूसरे शब्दों में, जैसा कि हमने देखा है, नए साहित्यिक आंदोलन की शुरुआत में, न सिर्फ पि चम, बल्कि पूरब भी मूलतः जुड़ा। बिंबवाद की कल्पना बिना पूर्व और पि चम के उपस्थिति के नहीं की जा सकती। दोनों का केंद्र बिंदु मात्र अनुवाद नहीं था, किंतु महत्वपूर्ण रूप से, अनुवाद की एक पद्धति थ। दूसरा, बिंबवाद ने पूरी दुनिया में भी अपना असर

छोड़ा। उदाहरण के लिए, हिंदी कविता के बीसवीं सदी के प्रारंभ में, छायावाद की शैली बिंबवाद से प्रभावित थी। छायावाद, न सिर्फ, आधुनिक साहित्य प्रयोग के साथ शैलीगत हस्तक्षेप थ। यह उस काल के उपनिवेश विरोध भारतीय राष्ट्रवाद के मूल में भी थीं। किंतु उस अनुवाद की शैली का संदर्भ महाद्वीप के ऐतिहासिक स्थिति में भी जमा हुआ था। इसलिए, हम देखते हैं कि जिस प्रकार अनुवाद के द्वारा बिंबवाद ने एशियाई कविता को विनियोजित किया पि चम में एक नई शैली को विकसित करने में, उसके विपरीत छायावाद ने बिंबवाद को हिंदी कविता में एक शैली के रूप में ढाला और भारत में राष्ट्रीय साहित्य में योगदान दिया। उनकी राजनीति मूलतः अलग थी, किंतु वे अनुवाद के द्वारा जुड़े।

2.4 आधुनिकतावाद और अनुवाद में उत्तरवर्ती विकास

हमने देखा है कि बीसवीं शताब्दी के प्रथमार्ध में राष्ट्र संघ और ब्रिटेन के लेखक विदेशी साहित्य और संस्कृति को अपने साहित्यि को नया बनाने के लिए एक प्रारूप और प्रेरणा स्रोत के रूप में इस्तेमाल किए। उदाहरण के लिए, जेम्स जोस ने जर्मन लेखक जेरॉट हार्टमैन के साथ मिलकर आपरिश नाटक को खेला और डब्लू.बी. यीट्स ने ग्रीक ड्रामा को मॉडल के रूप में प्रयोग किया। मैरीन मुरे ने ला फैंटीन के नीतिकथाओं को अनुवाद किया। इलियट ने फ्रेंच निबंधों का अनुवाद किया। वर्जीनिया वुल्फ ने दोस्तोवेस्की का अनुवाद किया। विलियम्स कार्लोस विलियम्स ने कई फ्रेंच कवियों का अनुवाद किया। स्पेनि ा और लैटिन अमेरिकन लेखक जैसे ओक्टावियो पॉज, चाब्लो नरूदा और मिगुल हर्नांडेज ने भी अनुवाद किया। हमने पहले ही विस्तार से एज़रा पाउंड के बारे में चर्चा की और उनके चीनी तथा जापानी अनुवादों पर भी चर्चा की। वास्तव में पाउंड ने अनुवाद को नए लेखकों को प्रभावित करने के लिए एक आवश्यक कार्य के रूप में नियत किया।

बहुत सारे आधुनिक लेखक एक से अधिक भाषाओं में लिखने लगे जिससे कि वे दो संस्कृतियों में अपनी नैया पार लगा सके। इन समर्थक, कई मामलों में, एक संस्कृति से दूसरी तक जाकर तथा एक देश से दूसरे देश में जाकर यात्रएं की। यद्यपि, उन्होंने अपनी भाषा और अपनी पहचान की संकल्पना को अस्थिर भी किया। इलियट ने अपनी कविता *वेस्ट लैंड* में भाषा और स्थान में लगातार घूमते रहे। इलियट की तरह संख्या में कई आधुनिक लेखक संकर संस्कृति वाले व्यक्ति थे और उन्होंने अपने लेखन में कई संस्कृतियों में अपनी भावना की अभिव्यक्ति प्रदान की। न्यूजीलैंड में जन्मी कैथरीन मैन्सफील्ड और डोमिनिका में जन्में जीन राईस ने अपने स्वयं के उपनिवेशवादी संघर्ष का अनुवाद किया। प्रवास कथा में उनकी पहचान की समस्या जहाँ कि महिला समर्थक एक विदेशी संस्कृति में अपना मार्ग तैयार करते हैं। यहां यह वास्तविकता उद्धृत करना जरूरी होगा कि मलि लेखकों के मामले में आधुनिकतावाद अलग होता है अपेक्षा त पुरुष लेखकों के नियमानुकूल/ महिलावादी आलोचक इस विचार के हैं कि, चूंकि महिलाएं ऐतिहासिक रूप से संस्थाओं और उन विश्वासों से बाहर की हैं जिनसे इतिहास बनता है, आधुनिकता की छेदन रेखा इसे 'नया' बनाती है, जो कि वास्तव में महिला लेखिकाओं को यह अपरिहार्य बनाता है कि वे किसी आदेश का विरोध करें। इसलिए कई आधुनिक महिला लेखिकाएं यह मानती हैं कि न सिर्फ साहित्य का ढांचा नया होना चाहिए अपितु उन्हें मिलकर एक नई भाषा का आविकार करना चाहिए। सन् 70 और 80 के दशक ने न सिर्फ लिंग अध्ययन में विकास को देखा अपितु अनुवाद अध्ययन में एक समानांतर विकास को भी देखा।

अनुवाद और महिलावादी अध्ययन के कई चिंताएं भी हैं। महिलाओं और अनुवाद दोनों को निम्न कोटि का माना जाता है, अपेक्षाकृत पुरुषों एवं मूल लेखन से। दोनों को वफादारी के प्रश्न से लगातार गुजरना होता है क्योंकि यह माना जाता है कि उनमें कमियां होती हैं, सभी अनुवाद कार्य 'प्रसिद्ध महिलाओं' जैसे होते हैं, जैसा कि जॉन फ्लोरिओ ने 1603 में मोटैन के अनुवाद की भूमिका में लिखा। कई भूमिका लेखनों और समीक्षा-ग्रंथों में, जैसाकि जॉर्ज स्टीनर द्वारा ऑफ्टर बाबेल (1975) की भूमिका में लेखक और अनुवादकों के बीच संबंध को पूर्णतया यौनिक बनाया गया। फ्रेंच आलोचक गिल मैने (1613-92)ने एक नया शब्द 'लेस बेल इन फिडलस' को प्रसिद्ध बनाया जा यह घोाति करता है कि अनुवाद या तो सुंदर होना चाहिए या विश्वसनीय। महिला लेखिकाएं इस वफादारी के प्रश्न पर सवाल उठाती हैं। यह अनुवाद किसके लिए विश्वसनीय होना चाहिए। ऐतिहासिक रूप से भी अनुवाद और महिलाएं अंतरंग संबंध रखती हैं। अनुवाद को महिलाओं के लिए सबसे उपयुक्त कार्य माना गया अपेक्षाकृत

स्वतंत्र लेखन के जिससे कि वह पुरुषों के प्रभुत्व वाले साहित्यिक दुनिया में कदम रख सके। मध्य युग और नवजागरण लेखन दोनों में महिलाओं को आक्रमण पाया। सुधार के वक्त महिलाओं को धार्मिक पुस्तकों के अनुवाद का जिम्मा दिया गया। 18वीं शताब्दी के दौरान आफरा बेन ओर कुछ अन्य महिला अनुवादकों ने मिलकर दूसरे राजनीतिक परियोजनाओं जैसे दासता विरोधी आंदोलनों के साथ अपनी साहित्यिक रुचि बढ़ाते हुए स्त्रीवाद के प्रथम चरण की शुरुआत की। आफरा बेन फ्रेंच और लैटिन दोनों भाषाओं से अनुवाद कर रही थीं तथा साथ ही अपना स्वतंत्र लेखन भी कर रही थी। 18वीं शताब्दी में ही मैरी वुलस्टोनक्राफ्ट भी अनुवाद कर रही थीं और साथ ही महिलाओं के अधिकार की न्याय संगतता जैसी किताब भी लिख रही थीं जिसे वृहत्तर रूप में अनूदित किया गया।

शेरी सिमन अपनी पुस्तक *अनुवाद में लिंग* सांस्कृतिक *पहचान और संचार की राजनीति* में अनुवाद में लिंग के मामलों को उठाती है और अनुवाद अध्ययन को सांस्कृतिक अध्ययन के वृहत्तर संचार की ओर ले जाती है। लेखिका बहस करती है कि कैसे स्त्रीवाद एक राजनीतिक और साहित्यिक आंदोलन के रूप में अनुवाद अध्ययन को भी प्रभावित किया। वह इस विचार की है कि लैंगिक पहचान न सिर्फ अनुवादक के अनुवाद को प्रभावित करता है अपितु विशिष्ट परियोजनाएं, जिसे अनुवादक प्रात्साहित करता है वह भी उसे प्रभावित करती है। वह लूस इरिगेरी, जुलिया क्रिस्टोवा और हेलेन सिक्सस जैसी फ्रेंच स्त्रीवादी सिद्धांतों के वशीकरण की चर्चा भी करती है। जब वे उन्हें अंग्रेजी में अनुवाद करती हैं। तब वे बाईबिल के समकालीन स्त्रीवादी अनुवाद की भी चर्चा करती हैं और स्त्रीवादी मांग करती है बाईबिल के अत्यधिक ऐतिहासिक अनुवाद की। समकालीन स्त्रीवादी सिद्धांतों को मानते हुए, शेरी सिमन यह भी चर्चा करती हैं कि कैसे लिंग एक पहचान और अनुभव के तत्व के रूप को सामाजिक चेतना के द्वारा प्राप्त करती है। उदाहरण के लिए गायत्री चक्रवर्ती स्पीवॉक का कार्य उत्तर औपनिवेशिक सिद्धांत इर्दगिर्द घूमता है। यद्यपि लिंग का मामला अनुवाद अध्ययन में एक महत्वपूर्ण विषय रहा है। भाषाविद् और अनुवादक हमेशा लिंग के बारे में वाद-विवाद करते रहे हैं और इसके चित्र संस्कृतियों में भिन्न अर्थ की भी चर्चा करते रहे हैं। कुछ संस्कृतियों में बहुत ही विशिष्ट लिंग होते हैं और कुछ में नहीं। उन भाषाओं में अनुवाद करना जिसमें विशिष्ट लिंग नहीं होता बहुत कठिन होता है जब लक्ष्यभाषा में लिंग की बात की गई हो। एस. रोमेन अपनी पुस्तक 'लिंग और समुदाय' में लिंग रूढ़ि को विश्वास पद्धति के रूप में देखकर बात करती है और महिला एवं पुरुषों के गुणों को एक नुस्खे या अकथित व्यावहारिक अपेक्षा के रूप में देखती है तथा उसे प्रमुख विभेदों जैसे नस्ल, वर्ग, संस्कृति, उम्र और संदर्भ आदि से जोड़कर देखती है। विभिन्न संस्कृतियों में भिन्न-भिन्न नुस्खे होते हैं जिससे कि एक महिला या पुरुष या पुरुष का निर्माण होता है। वह कई आचरण पुस्तकों को उद्धृत करती हैं जिसे पश्चिम के महिलाओं और पुरुषों ने लिखे हैं और तर्क करती हैं कि अपेक्षाएं जो इन किताबों में उद्धृत हैं वे दूसरे समाजों में अलग हो सकते हैं। ऐसे लिंग-भेद निश्चित रूप से किसी पाठ को अनुवाद करने में प्रभावित करते हैं जहां ऐसे लिंग संबंधित मामले आते हैं। उसी तरह, भाषाविद् यू.के. निसेन कहते हैं कि लिंग का कार्य एक ही संस्कृति में कुछ समय बाद बदल सकता है। निसेन 'सचिव' शब्द का उदाहरण देते हैं। वे कहते हैं कि 19वीं शताब्दी में सचिव प्रमुख तौर पर पुरुष होते थे जबकि आज इनका स्थान महिलाओं ने ले रखा है। उसी तरह 'टाइपिस्ट' शब्द के लिए लेडी टाइपिस्ट शब्द प्रयुक्त होता था। परंतु आज टाइपिस्ट शब्द लेडी का ही पर्याय बना गया है।

किस प्रकार लिंग का अनुवाद समस्या उत्पन्न करता है, निसिन *डाफ्ने डु मौरियर* के उपन्यास *रेबेका* का उदाहरण देते हैं।

वही कुक मैं समझता हूं, मैक्सिम?

पूरे उपन्यास में 'कुक' का लिंग उद्धृत नहीं है। निसेन उस पाठ का पांच अनुवाद है और कुक शब्द का किसी ने पुरुा अनुवाद किया है और किसी ने महिला। दूसरे उदाहरण में, निसेन कहती हैं कि कैसे बर्नाड शॉ के बैक टु मेथुसलेह में सचिव शब्द का भिन्न अनुवादकों ने भिन्न अनुवाद किया है। वह इस विचार के हैं कि सचिव शब्द का अनुवाद इस बात की अपेक्षा करता है कि अनुवादक किस संस्कृति से आता है। इसलिए शॉ के शब्दों में भिन्न लिंगों के लिए रूपांतरित शब्द है।

''उनमें से एक सचिव इसी सुबह यह कह रहा था कि कितना अच्छा औरस नौजवान मैं दिख रहा रहा हूं।''

2.5 सारांश

इस इकाई में आपने आधुनिकतावाद के साहित्यिक विमर्श के बारे में सीखा है और जिसे हम विश्व साहित्य कहते हैं। आपने कवि/अनुवादक एज़रा पाउंड ओर डब्लू.बी. यीट्स और उनके अनुवाद में योगदान के बारे में पढ़ा है। आपने सीखा है कि किस तरह पाउंड के चीनी कविता के अनुवाद ने एशियाई साहित्य के लिए द्वार खोला और यीट्स का आपरिश साहित्य कवि में राष्ट्रीय परियोजना का अंग थी। इसलिए आपने देखा कि अनुवाद एक राजनीतिक कार्य है और इसे इसके निर्माण के ऐतिहासिक काल के संदर्भ में देखना चाहिए। आपने यह भी सीखा है कि किस प्रकार विभिन्न संस्कृतियों का अनुवाद आधुनिकतावादी लेखकों के कार्यों में झलकता है क्योंकि उनमें से बहुत सारे लोग अपने दैनिक संघ़र्ा में भिन्न भाषाओं और संस्कृतियों से सामना करते हैं। आपने यह भी सीखा है कि किस प्रकार लिंग का मामला अनुवाद कार्य में भिन्न संस्कृतियों को प्रभावित करता है।

2.6 अभ्यास के लिए प्रश्न

1. विश्व साहित्य के दो प्रमुख भेदों की तालिका बनाइए। क्या आप कोई एक उदाहरण दे सकते हैं जिसमें एक साहित्य का विनियोजन दूसरी संस्कृति में अनुवाद की वजह से हुआ?
2. क्या आप यीट्स के अनुवाद उद्देश्य को पहचान सकते हैं?
3. क्या आप ऐसे दो उदाहरण दे सकते हैं कि कैसे आधुनिकतावाद और विश्व साहित्य अनुवाद के द्वारा जुड़ते हैं?
4. किस तरह आधुनिकतावादी लेखक अपने लेखन में भिन्न सांस्कृतिक संघ़र्ाों को अभिव्यक्त करने में सक्षम हुए हैं?

2.7 शब्दावली

बुर्जुआ : इस शब्द का फ्रेंच मूल बर्जीस है जिसका मतलब है शहर का आदमी। अंग्रेजी शब्द का तात्पर्य है शहरी मध्य वर्ग, भौतिक कल्याण के उनके प्रश्न, आदर योग्यता और मध्यम दर्जा।

2.8 कुछ उपयोगी पुस्तकें

- डमरोश डेविड, व्हाट इज वर्ल्ड लिटरेचर? प्रिंसटन युनिवर्सिटी प्रेस, 2003 फ्रांस, पीटर ऑक्सफोर्ड गाइड टु लिटरेचर इन इंग्लि ा ट्रांसले ान, ओ.यू.पी., 2000।
- याओ, स्टीवन जी, ट्रांसले ान एण्ड दी लैंग्वेज ऑफ मॉडर्निज्म : जेंडर, पॉलिटिक्स, लैंग्वेज, पालग्रोव, मैकमिलन, 2002।

इकाई 3 भारत विद्या की अनुशासन

इकाई की रूपरेखा

3.0 उद्देश्य

3.1 प्रस्तावना

3.2 आधुनिक भारत विद्या की शुरुआत

3.3 आधुनिक भारत विद्या की चरणें

3.3.1 अनुवाद परियोजना और अतीत का गौरव

3.3.2 प्रारंभिक भारतविध शास्त्रियों की आलोचना और पुरातन विकास की निंदा

(1) मिशनरियाँ

(2) उपयोगितावादी

(3) अन्य शर्तें

(4) वंश-विज्ञान, पुरातत्व और भारत विद्या

3.4 भारत विद्या का आलोचनात्मक विश्लेषण, भारत पर इसका प्रभाव और अनुवाद का प्रश्न

3.5 सारांश

3.6 अभ्यास के लिए प्रश्न

3.7 शब्दावली

3.8 कुछ उपयोगी पुस्तकें

3.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़कर आप जान सकेंगे :

- भारत विद्या के अनुशासन की मुख्य विशेषता और अनुवाद की सांस्कृतिक राजनीति की सूची;
- दर्शाए कि कैसे प्राचीन भारतीय साहित्य के अनुवाद की राजनीति ने इतिहास को लेखन का आकार दिया है;
- भारत विद्या के स्रोत सामग्रियों की विशेषताओं और अनुवाद से उसके संबंध की सूची;
- भारत विद्या का वंश-विज्ञान और पुरातत्व से संबंध की सूची।

3.1 प्रस्तावना

हम इस प्रश्न से आरंभ करेंगे, भारत विद्या क्या है? भारत विद्या प्राचीन भाषाओं और साहित्यों का अध्ययन है। यह प्राचीन पाठकीय स्रोतों की एक ऐतिहासिक जाँच पड़ताल है। भारत विद्या एि ायन अध्ययनों का एक उपसमूह है; और इसे 'इंडीक स्टडीज' या 'इंडियन स्टडीज' या 'साउथ एशियन स्टडीज' के नाम से भी जाना जाता है। शब्द 'भारत विद्या' या 'इंडोलॉजिक' जर्मन ज्ञान में भारतीय अध्ययन के अत्यधिक निकट है। इसलिए, अगर भारत विद्या प्राचीन साहित्य का अध्ययन है, भारत के संदर्भ में तो यह जैन और बौद्ध जैसे कुछ अन्य धर्मों और पाली भाषा और साहित्य जैसे कुछ अन्य भाषाओं के साथ-साथ मूल रूप से संस्कृत साहित्य और 'हिंदूइज्म' (हिंदूवाद) का अध्ययन है। उपर्युक्त अध्ययन के क्षेत्रों के अलावा वे समय के साथ-साथ बदलते व विकसित हो रहे हैं, विकास और परिवर्तन की प्रक्रिया संग्रहण की अवधि अपने अंतिम स्वरूप में संकलित किए जाने के कई सौ वर्षों पहले भी मौजूद थे। अरबी और फारसी भाषाओं ने संस्कृत और अंग्रेजी के बीच संबंध बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। उदाहरणस्वरूप, कभी-कभी प्राचीन विषयपाठ का स्थानांतरण या अरबी या फारसी अनुवाद का उपयोग

वैधानिक सूचियों या अंग्रेजी अनुवाद में किया जाता था। इस संक्षेप रूपरेखा के बाद कुछ और गंभीर मुद्दे की ओर चलेंगे।

प्राचीन विषय पाठ के युग संबंधित एक महत्वपूर्ण प्रश्न है; जैसे वे किस काल से संबंध रखते हैं, उनके लेखक कौन है। प्राचीन ग्रंथ पांडुलिपियों से भी पुराने समय से है और उनका अपना इतिहास रहा है। वे समय के साथ बदलते और विकसित होते रहे हैं, अपने संग्रह के संदर्भ में, विकास और परिवर्तन की यह प्रक्रिया आखिरी स्वरूप में संग्रहित किए जाने के पहले भी कई शताब्दियों तक मौजूद थे। दूसरे शब्दों में, कोई ग्रंथ अपने अस्तित्व है और जिसका रूप आज हम सबके सामने उपलब्ध है। जिस समय यह लिखा जा रहा था, उस अवधि को समझने के लिए हम इसका प्रयोग ऐतिहासिक सूचना स्रोत के रूप में कर सकते हैं। लेकिन, यदि संग्रहण समय के लंबे अंतराल तक चलता रहा, तो इसके विभिन्न कालानुक्रमिक स्तरों और समय के साथ निर्मित अंतरवे ान या जुड़ाव की पहचान करना आवश्यक हो जाता है। आज, हमलोग जानते हैं कि अधिकांश प्राचीन ग्रंथ सिर्फ एक लेखक के द्वारा नहीं बल्कि कई लेखकों के द्वारा लिखा गया है। हालाँकि, इनमें से कई लेखक अज्ञात रहे हैं उनकी पृष्ठभूमि और पूर्वाग्रहों को प्रद ित करते दृष्टिकोण, जैसे कि वर्ग, धर्म और लिंग की पहचान आवश्यक है।

हमलोग कुछ आवश्यक प्रश्नों को जरूर पूछेंगे जो इन वर्गों के प्रश्नों के उत्तर जानने की कोशिश करते हैं। एक प्रश्न पूछ सकते हैं कि इन ग्रंथों की रचना कहाँ की गई थी और किस भौगोलिक क्षेत्र में ये प्रचलित हुए थे? तुम अवश्य पूछ सकते हो किसने इसे प्रचारित-प्रसारित किया और कैसे वे इस्तेमाल करते गए? एक अन्य महत्वपूर्ण प्रश्न अवश्य हो सकता है कि इनके समझ कौन था? अंततः सांस्कृतिक संरचना, राजनीतिक शक्ति और सामाजिक अस्तित्व में इन सभी की क्या भूमिका या स्थान थी?

हमें यह याद रखना चाहिए कि एक ग्रंथ जो सूचनाएँ देता है उसे सावधानीपूर्वक एक निश्चित रूपरेखा या साहित्य के प्रकार या व्यक्तिगत शैली के अंदर समझी जानी चाहिए। कविता या नाटक के संदर्भ में, वि ोण इसके साथ की साहित्यिक परंपरा के प्रति संवेदना और लेखक की कल्पना और शैली की माँग करती है। लेकिन हम यह जानते हैं कि पूरा प्राचीन साहित्य सिर्फ कविता या नाटक नहीं है। यह विभिन्न प्रकार के लेख हो सकते हैं, अर्थ, राजनीति या धर्म। इसलिए, दूसरे मामलों में, एक ग्रंथ आदर्श की प्रस्तुति करता है न कि वास्तविक स्थिति की और यह इस रूप में भी नहीं पढ़ा जा सकता कि उस अवधि में क्या हो रहा था। हमें यह याद रखना होगा कि प्राचीन ग्रंथ मिथकों से भरे हुए हैं। भले ही मिथक हमें इतिहास के बारे में कुछ बता सकते हैं, परंतु यह ऐतिहासिक विवरण नहीं हो सकता। वे समाज के कुछ निश्चित पहलुओं की तरफ इशारा करते हैं जिसे विभिन्न स्रोतों के साथ मिलाकर जाँच करनी पड़ेगी।

3.2 आधुनिक भारत विद्या की शुरुआत

परिचय में, हम 'भारत विद्या क्या है' के संक्षिप्त वर्णन के बारे में जानकारी प्राप्त की। अब हमें इसके पुराने विकासों पर ध्यान केंद्रित करना पड़ेगा होगा। पूर्व-आधुनिक या पूर्व-औपनिवेशिक युग में कई विदेशियों ने भारतीय समाज, इतिहास और संस्कृति के अध्ययन के लिए भारतीय भाषाओं को सीखा। क्या आप ऐसे किसी एक उदाहरण के बारे में सोच सकते हैं? अल्बरूनी एक ऐसा प्रचलित उदाहरण है। कई कारणों से, अट्ठारहवीं शताब्दी के बाद में काल में ब्रिटि ा आधिपत्य की स्थापना के साथ, भारतीय समाज का व्यवस्थागत ज्ञान बहुत तेजी से बढ़ना शुरू हुआ। प्र ाासनीय कारणों से ऐसा महसूस किया गया कि भारतीय समाज की संरचना के बारे में व्यवस्थागत जानकारी सहायक साबित हो सकती है। कुछ ब्रिटिश पदाधिकारियों ने भारत की प्राचीन भाषाएँ भी सीखीं। मिशनरी सक्रियताओं के बढ़ावे ने भी भारत विद्या के अनुशासन के विकास में योगदान दिया। भारतीय समाज और धर्म का ज्ञान गद्य रचना कार्य की विशेषता थी। इसलिए, उन्नीसवीं सदी के अंत तक भारतीय समाज तीन मुख्य परंपरा के दृष्टिकोण सदृश्य हुए। ये परंपराएँ थीं।

(क) द ओरिएटस्टि

(ख) द एडमिनिस्ट्रेटिव और

(ग) द मिशनरी।

भारतीय समाज, संस्कृति और धर्म के बारे में इन तीनों परंपराओं के अपनी अलग-अलग धारणाएँ थी, और ये धारणाएँ भारत में उनकी भूमिका और भारत के बारे में उनके दृष्टिकोण से लगभग निश्चित थी (हालाँकि, नहीं पूर्णतः, आवश्यक रूप से नाही एक रूप से)। हालाँकि किसी भी रूप में ये धारणाएँ एक-दूसरे से अलग नहीं थे।

3.3 आधुनिक भारत विद्या की चरणें

अठारहवीं शताब्दी के अंतिम तीन दशक और उन्नीसवीं शताब्दी के पहले दो दशक देशी बुद्धिजीवी वर्गों और भारत विद्या के विद्वानों के बीच निकट संपर्क के चरण की अवधि थी। ईस्ट इंडिया कंपनी इस बात से भली-भाँति परिचित थी कि उन्हें भारत के लोगों के धर्मों, कानूनों, रीति-रिवाजों और भाषाओं की जानकारी प्राप्त करने के लिए पूरी तरह से देशी बुद्धिजीवी वर्गों पर निर्भर रहना पड़ेगा। इससे अलग, ऐसे कई पश्चिमी विद्वान थे जो भारतीय महाद्वीप के शास्त्रीय भाषाओं में संचित प्राचीन संस्कृति और ज्ञान के भंडार के प्रति सहानुभूति की भावना रखते थे। हालाँकि, ऐसा बहुत दिनों तक नहीं रहा। इसलिए, इससे क्या बदलाव हुए?

उन्नीसवी शताब्दी के आधे सदी के बीच से, औपनिवेशिक राज्य और पि चमी बुद्धिजीवियों ने (कुछ अपवादों को छोड़कर) इस आकर्षण से दूरी बनाना प्रारंभ कर दिया। कुल मिलकार, प्राचीन भारतीय शास्त्रीय परंपराओं की सहायक मनोवृत्तियाँ भारतीय प्राचीनता और लोगों के प्रति सांस् तिक/राजनीतिक अभिमान के रूप में बदलती गई। साथ ही साथ, हमें यह नहीं मानना चाहिए कि औपनिवेशिक शासन के दौरान एक खास समय में, भारत विद्या अध्ययनों के सारे विद्वाने या तो 'इंडोमेनिया' या 'इंडोफेबिया' से प्रभावित थ। असल में, इस संबंध में ऐतिहासिक विकास कुछ और ही था। उदाहरण के लिए, भारतीय अध्ययनों या भारत विद्या शास्त्र का सबसे रोमानी चरण उन्नीसवीं सदी के दूसरे दशकों तक आया, जब भारत में औपनिवेशिक शक्ति अपने चरम सीमा पर थी। यह वही अवधि था जब भारतीय प्राचीनता और लोगों के प्रति आकर्षण घटकर सांस्कृतिक/राजनीतिक अभिमान में बदल चुका था। तब किसने भारत विद्या शास्त्र के रोमानी चरणों को संभव बनाया? भारत विद्या अध्ययनों की औपनिवेशिक परियोजना जो उपर्युक्त लिखित ईस्ट इंडिया कंपनी के भीतर शुरू हुई, यह जर्मन ज्ञान था जो उन्नीसवीं सदी के द्वितीय दशकों में भारत विद्या के रोमानी चरणों से जुड़ा हुआ था। यह चरण प्रायः ओरिएंटलिज्म के रोमानी चरण के रूप में जाना जाता है।

3.3.1 अनुवाद परियोजना और अतीत का गौरव

अब तक, हमने भारत विद्या शास्त्र या भारतीय अध्ययनों का सामान्य अर्थ और कालक्रम पाठ्यक्रम तैयार करने की कोशिश की है। अब हम इस ज्ञान के शाखा के विकास में अनुवाद ने जो भूमिका निभाई उस पर ध्यान केंद्रित करेंगे। 1773 में ब्रिटि ा संसद ने रेगुलेटिंग कानून बनाया। हेस्टिंग्स गवर्नर जनरल बनाया और उसकी सहायता के लिए एक कैंसिल का गठन किया गया। वह भारतीय संस्कृति की संभावनाओं को भारत में मजबूत प्रशासनिक व्यवस्था के आधार के रूप में तलाश करना चाहता था।

वह भारत में मजबूत प्रशासनिक व्यवस्था के लिए भारतीयर संस्कृति के संभावनाओं को आधार के रूप में तला ा करना चाहता था। उसने तत्कालीन देशी संस्थानों के भीतर रह कर काम करना तय किया, और इस उद्देश्य से, भारतीय परंपराओं के अनुरूप भारतीय भाषाओं में दक्ष ओरिएंटलाइज्ड सेवा अभिजात वर्गों का निर्माण करना प्रारंभ किया। इसलिए, हेस्टिंग्स ने कंपनी के नौवजान अधिकारियों को एि ायन साहित्य और अनुवाद में बढ़ावा देना शुरू किया। उदाहरण के लिए, नैथनियल लैल्हेड, हेस्टिंग्स के प्रतिभा ाली नौजवानों में से एक, ने बांग्ला भाषा के व्याकरण को प्रकाशित किया। हेस्टिंग्स के काल में, और उसके कुछ समय पश्चात्, भारतीय भाषाओं की दक्षता ने व्यावसायिक विकास और ओरिएंटल सभ्यता के साहित्यिक भंडार दोनों तरफ के मार्ग की ओर रास्ता बनाया। चार्ल्स विल्किंस, उदाहरण के लिए, जिसने कलकत्ता में पहला सरकारी छापाखाना खोला, ने 1783 में भगवद् गीता का अनुवाद किया। उसने ि ालालेखों के प्रयोग द्वारा बंगाल के प्लासी के इतिहास की पुनर्रचना की नींव डाली, और वह एशियाटिक रॉयल सोसायटी के चार्टर मेम्बरों में से एक था। कंपनी ने पूर्वी भाषाओं और संस्कृतियों की उच्च शिक्षा के कई केंद्रों की स्थापना भी की। उदाहरण के लिए, 1781 ई. में कलकत्ता मदरसा, 1784 ई. में एशियाटिक सोसायटी ऑफ बंगाल, 1792 ई. में बनारस में संस्कृत कॉलेज, 1800 ई. फोर्ट विलियम कॉलेज, 1807 ई. में इंग्लैंड

में हेलीबेरी कॉलेज और 1820 ई. में पूना और कलकत्ता में हिन्दू कॉलेज की स्थापना प्राचीन औपनिवेशिक सरकार द्वारा इस संबंध में किए गए संस्थागत प्रयास थे। इसके अलावा, कई पश्चिमी विश्वविद्यालयों में, विशेषकर इंग्लैंड, फ्रांस और जर्मनी में पूर्वी भाषाओं और साहित्यों के अध्ययन के लिए विभागों की स्थापना की गई।

सरकार चलाने के लिए कानून की आवश्यकता होती है। औपनिवेशिक सरकार को भारत में सरकार चलाने के लिए कानूनी नियमों की आवश्यकता थी। हम यह पूछ सकते हैं कि ये कानूनी नियमों का आधार क्या था। इस अवधि के दौरान, कानूनी नियमों को प्राचीन/शास्त्रीय ग्रंथों के अनुरूप संग्रहित किया गया था। इसने शास्त्रीय ग्रंथों के अनुवाद और लिप्यंतरण की संलग्नता की जरूरत को आवश्यक बना दिया। अट्ठारहवीं शताब्दी के अंतिम ढाई दशकों और उन्नीसवीं शताब्दी के प्रथम ढाई दशकों के दौरान राजनैतिक प्रभावी विचार थे कि कंपनी को भारतीय लोगों को पि चमी ज्ञान के बारे में पढ़ाने को लेकर जल्दबाजी करने की कोई आवश्यकता नहीं। हिन्दू और मुस्लिम शासकों के पद चिह्नों का अनुसरण और परंपरा के तर्ज पर संस्कृत और अरबी शिक्षा को बढ़ावा देना ही सिर्फ इसका कर्तव्य था।

हालाँकि, कुछ इतिहासकारों ने तर्क दिया है कि उन समूहों जिन्होंने शास्त्रीय या भारत विद्या ज्ञान में रुचि दिखाई, के मन में भी समकालीन भारतीय धर्मों और संस्कृतियों के लिए कोई सम्मान की भावना नहीं थी। दूसरे शब्दों में, उन्होंने सोचा कि अठारहवीं सदी के अंत और उन्नीसवीं सदी के शुरुआत में भारतीय जनता अपने सामाजिक जीवन में अपने धार्मिक ग्रंथों के राह से भटक चुके थे। वे अपने निजी संवादों के जरिए भारतीयों को उनके भूलों के गहरे जड़ों को दिखाने की इच्छा प्रायः जाहिर करते रहे; जैसे कि वे किस प्रकार अपने ग्रंथों के रास्ते से भटक चुके थे। वे हिन्दूओं को उनके वर्तमान धर्म पर से विश्वास को यह दिखाकर उखाड़ फेंकना चाहते थे कि वे प्राचीन धर्मग्रंथों से भटक चुके हैं जो उनके अनुसार पूर्णरूपेण धर्म परिवर्तन की ओर पहला कदम था। उनका मानना था कि अगर एक बार हिन्दूओं को यह दिखा दिया जाए कि वे अपने धर्म से कितना भटक चुके हैं, वे उसके बाद इसाई धर्म के परिवर्तन के लिए राजी किए जा सकते थे। इस प्रकार, कुछ ऐसे इतिहासकार हैं जिनका तर्क था कि धार्मिक परिवर्तन के उद्देश्य प्रायः भारत विद्या अध्ययनों के केंद्र में था। संस्कृत शब्दावलियों के साथ प्राचीन यूरोपीय भाषाओं की तुलना के जरिए, जैसे ग्रीक और लैटिन, विलियम जोंस ने इंडो-यूरोपीयन लोगों के भाषाओं के मूल उद्भवों का तर्क दिया। भले ही, इंडो यूरोपीयन की अवधारणा का पहला नामकरण 1813 ई. में टॉमस यंग द्वारा किया गया था, जोंस पहला व्यक्ति था जिसने इंडो-यूरोपीयन भाषाओं की एकता या जिसे आज इंडो-यूरोपीयन भाषा परिवार कहते हैं के विचार को सामने रखा। जोंस वैसे अवधारणाओं कार बहुत बड़ा आलोचक था जो सिर्फ भाषाओं के शब्दावलियों के तुलना तक ही सीमित थी। उसने संस्कृतियों की एकता पर भी बल दिया। जोंस ने वैदिक साहित्य और प्राचीन विश्व के दर्शनों के तुलनात्मक कार्यों की तरफ भी इशारा किया। इन खोजों के आधार पर, उसने बताया कि ग्रीक, रोमन, भारतीय और मिस्त्र के लोगों मूलतः एक थे जो कई भागों में बटे और मध्य पूर्व, में मूल केंद्र से चैल्दिया या इरान के नाम से, अपने संबंधित देशों की ओर चले गए। भारत से मूल धर्म और सभ्यता पूर्व की ओर की तरफ फैल चुकी थी।

हालाँकि, टॉमस. आर. ड्राउटमन और माइकल डॉडसन ने बताया के विलियम जोंस द्वारा प्रस्तावित इंडो-यूरोपीयन भाषा परिवार की अवधारणा नोआ और उसके तीन पुत्रें के अवतरण के बाइबिल के वर्णन पर आधारित था। 4004 ठण्ब्ब् में नोओ का बाढ़ आया था। जोंस का मानना था कि भारतीय सभ्यता नोआ के बाढ़ के तुरंत बाद राम द्वारा निर्मित किया गया था। इस प्रकार, हम जोंस द्वारा प्रस्तावित तीन मुख्य तत्वों को पाते हैं जो भारत विद्या और भारत के ऐतिहासिककरण के केंद्रीय सिद्धांत बने : मोजेक मानव जाति-विज्ञान, संक्षिप्त बाइबिल का कालक्रम और प्राचीन ज्ञान का विचार।

भारत विद्या ज्ञान के इस उपर्युक्त तथ्यों को मानते हुए , कोलब्रुक ने इंडो आर्यन काल को स्वर्ग युग का संरचित मूर्तरूप माना। इसलिए, उसके विचार में, उत्तरवर्ती विकास का मतलब वि ाुद्ध वैदिक सार में अवनति, वि ति या भटकाव से था। यह कोलब्रुक था, उदाहरण के लिए, राममोहन रारय के सती प्रकरण के ठीक बीस साल पहले, जिसने ग्रंथों के स्रोतों से द ार्शाया कि बंगाल में विधवाओं का स्वैच्छिक आत्मदाह वास्तविक परंपरा से एक विचलन था। यह कोलब्रुक था जिसने पहली बार भारतीय जाति व्यवस्था और प्राचीन ग्रंथों की जरूरतों और वास्तविक

समकालीन प्रथाओं के बीच से उसके कई त्रुटियों की जाँच-पड़ताल की। उसने वैदिक काल में अद्वैतवाद संबंधी परंपरा को भी देखा था।

इस प्रकार, भारत में प्राचीन औपनिवेशिक अवधि के दौरान हम दो चीजों को पाते हैं। प्रथमतः यह एक आम धारणा था कि प्राचीन भारतीय ग्रंथ या अरबी-फारसी ग्रंथ (मध्यकालीन अवधि के लिए) भारत पर ज्ञान का एक संग्रह था। अगर औपनिवेशिक सरकार को जनता के ऊपर सफलतापूर्वक शासन चलाने के लिए आवश्यक सूचनाओं को प्राप्त करना होगा, अतः इन ग्रंथों को अनुवाद करने की आवश्यकता है। यह औपनिवेशिक कानूनी और प्र ाासनिक नियमों के विकास के लिए किए गए अनुवादों में प्रदर्ि ात होता था। दूसरा, हम यह भी देखते हैं कि भारतीय ज्ञान के भंडार के रूप में प्राचीन संस्कृत और अरबी-फारबी के ग्रंथों पर विश्वास उन अवधारणाओं और समझदारी पर आधारित था जो मूल रूप से पि चमी था। भारतीयों ने अनुवाद कार्यों में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई थी, लेकिन अनुवाद परियोजनाओं पीछे के अवधारणाओं और उद्देश्यों के शुरुआत करने वाले उनके अभिकरण औपनिवेशिक सत्ता संबंधों की सीमा में बँधी हुई थी।

3.3.2 प्रारंभिक भारत विद्या शास्त्रियों की आलोचना और पुरातन विकास की निंदा

अब हमलोगों को उन्नीसवीं शताब्दी के शुरुआती व्र्षों में, एक ऐसी अवधि जो महानगरों में परिवर्तन की साक्षी रही है, भारत विद्या की समालोचना पर ध्यान केंद्रित करें। प्राचीन भारतीय सभ्यता के आर्क्राण ने भारतीय संस्कृति और धर्म की निंदा का रास्ता तैयार किया। यह कई तरह के विकासों का परिणाम था। उदाहरण के लिए, यह ऐसा उपयोगितावादी का प्रभाव बढ़ रहा था, और चार्ल्स ग्रांट, ग्रांट डफ और जेम्स मिल के लेखों ने भारत में औपनिवेशिक नीतियों पर इन विचारधाराओं के बढ़ावे में महत्वपूर्ण भूमिका अदा की। सत्ताधारी समूहों के सांस्कृतिक अभिमान के अलावा, इस ज्ञान और राजनीति में और कई अन्य विकास हुए जिसने इस परंपरा में योगदान दिया। ये सारे तथ्यों को निम्नलिखित पैराग्राफ में सारांश के रूप में दिया जा रहा है।

1. मिशनरियाँ

मिशनरियों ने भारत में छापाखाना लाया और भारतीय भाषाओं में पुस्तकों को छापना शुरू किया। उन्होंने कई देशी भारतीय भाषाओं के व्याकरणों और शब्दको ाों को तैयार करने में गहरी रुचि ली। उन्होंने विभिन्न भारतीय भाषाओं के धार्मिक ग्रंथों के अनुवाद और साथ ही साथ इसाईयत का देशी भाषाओं और अंग्रेजी के अनुवाद में अग्रणी भूमिका निभाई। अध्ययन को आकार देने में उनका बहुत बड़ा योगदान था। किताबों के अनुवाद और व्याकरणों की तैयारी के अलावा उन्होंने प्राचीन भारत विद्या शास्त्रियों द्वारा किए गए प्राचीन भारतीय शास्त्रिय ग्रंथों के अनुवादों को पढ़ने में भी गहरी रुचि ली। हालाँकि अलग-अलग मिशनरियों के बीच उनके रणनीतियों और उद्देश्यों के मामले में कई महत्वपूर्ण अंतर थे, फिर भी कुल मिलाकर जब भी मिशनरियाँ शास्त्रिय भाषा और साहित्य का अध्ययन करती थी, यह मुख्यतः हिन्दुत्व के प्राचीन ग्रंथों का पढ़ना और उनके विचारों की आलोचना करना मुख्य उद्देश्य था। वे सोचते थे कि भारतीय समस्याओं का वास्तविक हल भारतीय लोगों को इसाई धर्म में परिवर्तित होने से और उनके बीच आधुनिक यूरोपीय ज्ञान का प्रसार करने से होगा।

भारतीय विद्या शास्त्रियों या ओरिएंटलिस्ट के विरुद्ध, जो लोगों और भाषाओं में प्राचीन समरूपता की बात करते थे, चार्ल्स ग्रांट जैसे मिशनरी ने तर्क दिया कि भारतय ब्रिटि ा से हर मामलों में भिन्न है। ओरिएंटलिस्ट या भारत विद्या शास्त्रियों की तरह, जब वे मिशन के अंदर आए तो मिशनरियों ने उनके लिए कल्पनाओं का एक पूरा संसार; और ये पूर्व मान्यताओं और कल्पनाओं ने हिन्दुत्व के प्रस्तुति और चित्रण को एक नया रूप दिया। इसके अलावा, भारतीय धर्म पर उनकी व्याख्या ब्रिटेन भेजी गई और मिशनरी सोसायटीज के सावधिक साहित्य के द्वारा सुदृढ़ और लोकप्रिय बनाया गया या ब्रिटिश के पाठक वर्ग के उपभोग के लिए संपादित, दुबारा पैंकिंग और प्रस्तुत किया गया। मिशन क्षेत्र के भीतर और बाहर वर्षों के विभिनन विकास के फलस्वरूप मिशनरी दृष्टिकोण थोड़ा मुलायम हो गया, भारतीय धर्म और हिन्दुओं की रूढ़िवादी छवि बीसवीं शताब्दी के शुरुआत से ही ब्रिटिशों के मन में घर कर गई थी।

2. उपयोगितावादी

जेम्स मिल ना तो कभी भारत आए थे और ना ही भारतीय भाषा जानते थे; फिर भी वे भारत पर अपनी आधिकारिक मत को अभिव्यक्तयिका। न सिर्फ कुछ मिशनरियाँ, जैसे कि चार्ल्स ग्रांट बल्कि जेम्स मिल जैसे उपयोगितावादी भी ओरिएंटलिस्ट द्वारा उत्पादित सामग्रियों; जैसे पश्चिमी दृष्टिकोण से भारतीय ग्रंथों के अनुवाद से या द्वारा प्रदत्त ज्ञान, पर निर्भर थे। दूसरे शब्दों में, वे कमोवे ा उन्हीं सामग्रियों (भारतवधिा शास्त्रियों के कार्यों) का इस्तेमाल किया पर वे उसके मूल्यांकन में भिन्न थे। जेम्स मिल ने संस्कृत, ग्रीक और लैटिन की समानता का चर्चा तक नहीं की। उसकी पुस्तक 'स्केल ऑफ सिविलाइजेशन' के विचार हिन्दू और मुस्लिम सभ्यता के समीक्षा का स्पष्ट सैद्धांतिक आधार बना। मिल ने भारतीय इतिहास के त्रिकोणीय वर्गीकरण की नींव डाली जैसे, हिन्दु काल, मुस्लिम काल और ब्रिटि ा काल। चार्ल्स ग्रांट जैसे मिशनरियों और जेम्स मिल जैसे उपयोगिकतावादी के दिखाए रास्तों का अनुसरण करते हुए, अंततः मैकाले ने भी पूर्व के शास्त्रीय भाषाओं और साहित्यों की भर्त्सना की। इस प्रकार, हम देखते हैं कि प्राचीन अंग्रेज भारत विद्या शास्त्रियों के आने से लेकर मिशनरियों और उपयोगितावादियों के आने तक, भारतीय ग्रंथों के अनुवाद की जगह और भूमिका में काफी परिवर्तन हुआ।

3. अन्य शर्तें

सामान्य तौर पर यह सत्य माना जाता है कि उपर्युक्त वर्णित भारत विद्या के सिद्धांत भारत में मशहूर छवि गहरे रूप में छपी हुई है और आज भी दृश्यमान है। फिर भी, ज्ञान में बहुत सारे विकास ने, विशेषकर भाषाशास्त्र पुरातत्व और वंश-विज्ञान के क्षेत्र में, उन्नीसवीं और बीसवीं शताब्दी के दौरान इन सिद्धांतों को चुनौती दी। उदाहरण के लिए, भाषायी एकता पर विलियम जोंस के विचार को एक नई दि ाा में बढ़ावा देने के लिए, कोलब्रुक ने 1801 में तर्क दिया कि भारत के सभी आधुनिक भाषाएँ संस्कृत से अलग होकर बनी है। इस प्रकार उसने भारत में भाषायी एकता के सिद्धांत को प्रस्तुत किया। हालाँकि, कोलब्रुक के लेखों के अनुरूप आने वाले दशकों में, भारत की मानव जाति-विज्ञान संबंधी और भाषायी क्षेत्र विस्तार और भी आगे विद्वान प्रशासकों और विद्वान मिशनरियों द्वारा ले जाया गया। इसने मूल की एकता के सिद्धांत से विशेष चरणों में तीन भाषा परिवार सिद्धांत की ओर अग्रसर किया। हम इन विशेषताओं को निम्नांकित चरणों में देख सकते हैं :

1. 1816 ई. तक, एलिस ने दिखाया कि द्रविड़ियन परिवार की भाषाएँ संस्कृत से नहीं आई है। इसका मतलब मूल-की-एकता के तर्क को खारिज करना और द्रविड़ियन भाषा परिवार के अलग अस्तित्व को कायम करना था।
2. 1840 ई. में, स्टीवेंसन और हॉजसन ने भारत में संस्कृत आगमन के पहले, आदिवादी भाषा और लोगों की एकता (द्रविड़ियन और मुंडा परिवार समेत) के सिद्धांत का प्रतिपादन किया।
3. कॉल्डवेल ने अपने तुलनात्मक व्याकरण (1856) में स्पष्ट रूप से स्थापित किया कि मुंडा का अपना अलग मानव-जाति भाषाविज्ञान सत्ता है जो आर्यन और द्रविड़ियन से अलग है।

इस प्रकार, इसका अर्थ था कि न सिर्फ एक या दो बल्कि मानव-जाति भाषाविज्ञान की तीन पहचान थी : आर्यन, मुंडा या आदिवासी और द्रविड़ियन। इसके बाद भी, सारे विद्वानों का मानना था कि भाषा और भौतिकशास्त्र एक ही कहानी बयान करती है और एक ही अंत का वैकल्पिक साधन था। स्टीवेंसन मानते थे कि आर्यन भाषा गोरे लोगों द्वारा बोली जाती थी और काले द्वारा आदिवासी भाषाएँ बोली जाती थी। हॉजसन प्रायः जो भी रिर्पोट करते उसमें भाषा के वक्ताओं का भौतिकशास्त्री वर्णन जोड़ दिया करते थे। इन विद्वानों ने कभी नहीं महसूस किया कि भाषायी और भौतिकशास्त्री साधनों के प्रयोग का विवरण एक दूसरे से अलग हो सकता है जिसे एक साथ समझना बहुत मु कल है।

औपनिवेशिक विमर्श में भारत को समझने और व्याख्या करने के दृष्टिकोण में हुए परिवर्तन पर हमने ऊपर चर्चा की। उपर्युक्त चर्चा के आधार पर, ब्रिटि ा को भारत के बारे में बताने के लिए किन ग्रंथों के अनुवाद में हुए परिवर्तन के संभावित प्रभावों का क्या आप अनुमान लगा सकते हैं?

4. वंश-विज्ञान, पुरातत्व और भारत विद्या

पिछले खं डमें वर्णित पहले से ही हुए परिवर्तन के कुछ अन्य महत्वपूर्ण कारकों की ओर चलें। उन्नीसवीं सदी के अंत में, वैदिक युग के इंडो-आर्यन लोगों का चित्रण शुरू में विलियम जोंस और कोलब्रुक द्वारा चित्रित, एक जर्मन विद्वान फ्रेडरिक मैक्स मूलर (1823-1900) के हाथों द्वारा अपने अंतिम रूप में पहुँचा। इस आखिरी पुर्नरचना में, हम भाषा और वंश में एक निकटतम संबंध पाते हैं। इंडो-यूरोपीय भाषाओं के वक्ता आर्यन थे, जिनकी मजबूत शरीर, गोरा चेहरा, लंबी नाक और अच्छी ऊँचाई शारीरिक विशेषताएँ थी। मूलर ने दूसरी सहस्त्रब्दी ठण्ब् में उत्तर भारत के आर्यनवासियों के गुणों को रोमानी में प्रस्तुत किया।

आत्मनिरीक्षण और अन्य सांसारिक होने के बजाय, आर्यन गैर रहस्यवादी और बाहर के माने जाते थे। वे मजबूत, गो त का सेवन करने वाले, सामाजिक रूप से समतामूलक समाज के तस्वीर के रूप में प्रस्तुत किए जाते थे। इसकी प्रतिक्रिया स्वरूप, 'अन्य' की रचना पराजित अनार्यों के छवि के रूप में की गई थी, जो आर्यन अप्रवास के समय उत्तर भारत में रहते थे। हालाँकि, उसके बाद के लेखों में, मूलर ने स्पष्ट किया कि आर्यन कोई वंश या जाति नहीं था फिर भी उस समय यह धारणा प्रचलित हो चुकी थी। फिर भी, भाषाओं के वर्गीकरण और वंशों के वर्गीकरण के बीच तनाव दिखने की शुरुआत हो चुकी थी। 1861 ई. के अपने एक लेख कॉफर्ड ने ''आर्यन या इंडो-ध्योरी'' की गलतियों की रूपरेखा तैयार की, जो उस समय तक भारत के भारत विद्यानुरूपी ज्ञान का केंद्रीय स्तंभ बन चुका था। इस सिद्धांत की गलती है, कॉफर्ड ने तर्क दिया कि, बिना शारीरिक रूप या बौद्धिक क्षमता के भाषा और राष्ट्रीयता की काल्पनिक महत्वपूर्ण अनुरूपता पर आधारित थी। इसके विपरीत, उसने तर्क दिया, शारीरिक रूप और बौद्धिक क्षमता भाषा के प्रमाणों को उलट देती है।

अंत में, 1860 ई. दो महत्वापूर्ण विकासों ने तर्क की दृष्टि में पूरा बदलाव ला दिया। ये थे डार्विनवाद और दीर्घ कालीन विलुप्त प्राणियों (जैसे पुरातत्वों की भूमिका) के करीब मानवीय अवशेषों की खोज। ये दोनों विकास ने एक साथ मिलकर मानवीय इतिहास के संक्षिप्त छः हजार पुराने बाइबिल के कालक्रम को ध्वस्त कर दिया।

अब यह स्पष्ट हो चुका था कि मानवों में वंशों/रंगों का भेद एक बड़े समय के अंतराल, कम से कम लाखों वर्षों में विस्तृत, उस अवधि की तुलना में बहुत अधिक जिसमें इंडो-यूरोपीयन भाषाओं ने अपने प्रचलित प्राचीन भाषाओं से खुद को अलग बताया था। यह भी स्पष्ट हो चुका था इंडो-यूरोपीयन भाषाओं का निर्माण मानवीय जीवन के घटनाओं के शुरुआत से नहीं थी, बल्कि उसकी तुलना में हाल ही में मानवों द्वारा खोजी गई एक पुरातन चीज थी।

मानव समय सीमा का अचानक विस्तार का प्रभाव वंश के अध्ययन को जैविक रूप में, भाषा अध्ययन से अलग करना पड़ा। यह और भी स्पष्ट होता गया कि वंशों का निर्माण की गति भाषा परिवार के निर्माण की तुलना में काफी धीमी थी, मानव जाति-विज्ञान पर जोर देते हुए जिसने वंश और भाषा को एक दूसरे से जोड़ने का प्रयास किया।

इतना ही नहीं, प्रागैतिहासिक पुरातत्व के खोज ने यूरोप के लंबे मानवीय वृत्ति के पर्याप्त प्रमाणों को ढूँढा और दिखाया कि यूरोप के वंशों ने उन तमाम जगहों पर बहुत पहले से थे जहाँ वे अभी है।

1920 ई. तक, हिन्दू घाटी सभ्यता की खोज ने यह स्पष्ट किया कि भारत में सभ्यता की जड़ भारत विद्या ाास्त्रियों की मान्यताओं की तुलना काफी पहले से था। दरअसल, वास्तविक लेखकों और सभ्यता घाटी सभ्यता के विना ाकों के संबंध एक नया विवाद शुरू हुआ, जो प्रायः विचारधाराओं से संबंध रखता है : क्या आर्यन कहीं बाहर से आए थे या यहीं के कूल निवासी थे? और हिन्दू घाटी सभ्यता के लेखक आर्यन थे या मूल निवासी थे; और उसका विनाश किसने किया?

3.4 भारत विद्या और आलोचनात्मक विश्लेषण, भारत पर इसका प्रभाव और अनुवाद का प्रश्न

उन्नीसवीं सताब्दी के सामाजिक-धार्मिक सुधारकों और बीसवीं शताब्दी के राष्ट्रवादी इतिहासकारों ने प्रायः भारत विद्याशास्त्र की मान्यता की तरह वैदिक काल को स्वर्ण युग की मान्यता दी है। वैदिक समाज की ऐसी प्रस्तुति

औपनिवेशिक शासन के अपमान और दमन के जवाब के रूप में देखा जा सकता है। इसका मूल कारण यह दिखाना था कि प्राचीन काल में भारतीय लोग पि चमी लोगों की तुलना में बेहतर स्थिति में थे। हालाँकि, हाल के वर्षों में, कई वैचारिक/ऐतिहासिक कारणों से, वैचारिक फलक के इतिहासकारों ने भारत विद्याशास्त्र के विरासत के प्रति काफी आलोचनात्मक रुख अपनाया है।

कुछ इतिहासकारों के लिए, यह आवश्यक हो गया है। कि भारत विद्या के उन सिद्धांतों की आलोचना करें जो सांस तिक राष्ट्रवाद के ढाँचे में सही तरीके से नहीं स्थापित हो पा रहे हैं। कुछ ऐसे इतिहासकार हैं जो प्राचीन भारतीय लेखन में भारत विद्या के सामग्रियों से अधिक पुरातत्वों से प्राप्त स्रोतों को अधिक महत्व देते हैं। अन्य इतिहासकार काफी सतर्क संलग्नता चाहते हैं क्योंकि भारत विद्या के सामग्रियों के साथ कुछ मौलिक समस्याएँ हैं। फिर भी, कुछ इतिहासकार हैं, जो तर्क देते हैं कि इतिहास लेखन में भारत विद्या के उपयोग को छोड़ने के पर्याप्त आधार नहीं है, और वे ग्रंथों के स्रोतों के सावधानीपूर्वक और ऐतिहासिक रूप से संवेदनात्मक संचालन पर केंद्रित हैं।

बड़े स्तर पर पहले समूह के इतिहासकार के लिए, भारत विद्याशास्त्रियों के लेखन में एक केंद्रीय समस्या था कि वे इसाईयत की उच्चता में विश्वास रखते थे और उनकी भारत की भूमि को इसाई के सच्चे धर्म में गद्य रूप प्रदान करना। भारत विद्याशास्त्रियों के लेखन से जो भाारतीयता के गौरव या हिन्दू के अतीत को लेकर काफी गंभीर थे के लेखन से स्पष्ट पता चलता है। इस समूह में इसाई मिशनरी और जेम्स मिल और मैकाले शामिल थे। लेकिन यह उन भारत विद्याशास्त्रियों जो वैसे पूर्व के प्राचीन धर्मों के प्रशंसक के रूप में माने जाते थे उनके बारे में भी यही सच है। ये इतिहासकार यह साबित करना चाहते थे कि जो भारत के प्राचीन सभ्यता के प्रशंसक लोगों को उनके गलतियों के नींव की गहराई को दिखाना चाहते थे : उनके अंधविश्वास का जड़ कितना पुराना है। उनके मत के अनुसार नए धर्म में परिवर्तन के लिए वर्तमान धर्म में हिन्दुओं के विश्वास को उखाड़ फेंकना अति आवश्यक है। इसी श्रेणी में, जोंस और मूल जैसे नाम भी शामिल किए जा सकते हैं।

इस इतिहासकारों के लिए, दूसरी समस्या है कि भारत विद्याशास्त्रियों ने पूर्व के प्राचीन सभ्यताओं, वेद और संस्कृत भाषा को इसाई रूढ़िवादिता के विकास के तुलना में अधिक पुराना स्थान नहीं दिया।

इस प्रकार, वे वेदों और आर्यन सभ्यता को द्वितीय सहस्त्रब्दी ठण्ब् के पहले रखने के इच्छुक नहीं थे। इसके अलावा, भारत विद्या ाास्त्रियों ने भी आर्यन आक्रमण पर विश्वास किया, वे यहाँ तक मानते थे कि वे बाहर से आए थे। भारत विद्याशास्त्रियों ने यह तक दिया कि वेदों और संस्कृत भाषा बाहर से आया था और आर्यनों के आक्रमण के पहले कोई भी मूल सभ्यता नहीं थी। बाद में, जब हड़प्पा और हिन्दू घाटी सभ्यता की खोज हुआ, तब उन्होंने तर्क देना शुरू किया कि बाहर से आर्यन के आक्रमणों के कारण यहाँ की मूल सभ्यता का पतन हुआ। भले ही कुछ भारत विद्याशास्त्रियों ने मानना शुरू किय कि आर्यन आक्रमण एक मिथ है, फिर भी उनका मानना था कि संस्कृत और वेदों बाहर से आनेवाले लोगों की बड़ी सफलता थी। वे सब कुछ ऐसे कारण थे जिससे इतिहासकार भारत विद्या के आलोचक हो गए थे, जो एक समय में सांस तिक राष्ट्रवाद के विचारों के अंर्तनिहित तत्वों को प्रदान किया।र

आधुनिक इतिहासकारों द्वारा यह दिखाया गया है कि वैदिक प्रमाण को व्याख्या को वंशानुरूप बनाने के लिए लगातार कई बार पुर्नपाठन किया गया और वैदिक प्रमाण पर ''डार्क स्किनड सैवेज'' की छवि बड़े पैमाने पर पाठ के तोड़-मरोड़ के साथ जो चरित्र में 'महत्वपूर्ण' (substantive) और 'विशेषणीय' (adjectival) था को जबर्दस्ती लाद दिया गया। यह भी दिखाया गया है कि आर्यों की अवधारणा सामाजिक-भाषायी थी ना कि वंश भेद की सूचक थी। फिर भी, जोंस से कोलब्रुक और मैक्स मूलर का भारत विद्या ज्ञान आर्यनों के वंश-भेद दृष्टिकोण के निर्माण में प्रतिफलित हुआ और इस दृष्टिकोण से भारतीय उपमहाद्वीप के पूरे इतिहास की व्याख्या की गई।

उपर्युक्त वर्णित तर्क के अलावा, हाल के दशकों में इतिहासकारों ने दूसरी समस्याओं के तरफ भी ध्यान आकर्षित किया। उदाहरण के लिए, जब से आधुनिक भारत विद्या के विद्वान पंडितों की सहायता से ग्रंथों पर काम कर रहे थे, उन्होंने सारे हिन्दुओं के प्रति एक ब्राह्मणवादी दृष्टिकोण विकसित किया। दूसरा, भारत विद्याशास्त्री लगभग इस बात से सहमत हो चुके थे कि सारे ग्रंथ हिन्दुओं के संस्कृति और समाज के वास्तविक मार्गदर्शक थे। भारतीय समाज पर दृष्टिकोण जो पंडितों और शास्त्रियों (हिन्दू ग्रंथों के विद्वान) की सहायता से ग्रंथों के अध्ययन के बाद

अपनाई गई थी उसके कई परिणाम हुए। इसने एक मानक दृष्टिकोण का निर्माण किया कि ब्राह्मण समाज का प्रधान समूह था। भारत विद्या विद्वानों द्वारा समाज पर दिए गए ग्रंथ पर आधारित दृष्टिकोण की स्वीकार्यता ने भारतीय समाज के तस्वीर को स्थिर, समयहीन और स्थानविहीन के रूप पेश किया। भारतीय समाज के इस दृष्टिकोण, कोई प्रादेि ाक विभिन्नता नहीं थी। ग्रंथों से ली गई आदेशात्मक प्रामाणिक बयान और समूह या व्यक्तियों के वास्तविक व्यवहार के बीच संबंध में कोई प्रश्न नहीं था। भारतीय समाज एक नियमों के समूह के रूप में देखा गया जिसे प्रत्येक हिन्दू अनुसरण करतेर हैं। इस रूप में, एशियन लोग कल्पना में बहुत आगे गए, परंतु कारण और प्रभाव पर यूरोपीयन दिमाग का परमाधिकार था। भारत विद्या शास्त्रियों ने प्राचीन स्वर्ण युग के मिथक और इंडो-यूरोपीयन भाषा परिवार के विचार को प्रचार-प्रसार किया। वे यह भी मानते थे कि प्राचीन भारतीयों में इतिहास की जागृति नहीं थी।

पिछले खंड (5.3.3) में, हमने प्रश्न उठाया था कि क्या बाद की अवधि में प्राचीन भारत विद्या ज्ञान पर दुबारा नजर डालने से भारत संबंधी ज्ञान के उत्पादन में अनुवाद की भूमिका पर प्रभाव पड़ा? हम इस प्रश्न को यहाँ देखें। भारत विद्या के विकास में अनुवाद ने जो भूमिका निभाई उसके दो रूप हैं। पहला, इसने स्रोतों को उपलब्ध कराया; जैसे प्राचीन संस्कृत ग्रंथ, जिस पर भारत विद्याशास्त्र आधारित था। दूसरा, जब भारत विद्याशास्त्र एक विस्तृत साझा परिप्रेक्ष्य था, जैसा कि वारेन हेस्टिंग्स के नीतियों से स्पष्ट था, अनुवाद ने ज्ञान के औपनिवेशिक ढाँचे को विकसित करने और उसी आधार पर शासन चलाने के प्रयास के लिए साधन के रूप में यातायात का कार्य किया। किसी भी रूप में, ज्ञान के उत्पादक या ज्ञान की ओर के साधन के रूप में अनुवाद की भूमिका प्रमुख थी। फिर भी, ऐतिहासिक ज्ञान में सतत् विकास के साथ, हम पाते हैं कि अनुवाद की भूमिका में परिवर्तन आए। प्रथमत् वंश-विज्ञान और पुरातत्व में विकास ने ग्रंथों को स्रोतों के रूप में व्याख्या करने और प्राचीन भारतीय इतिहास के व्याख्या के पद्धतियों को गंभीर चुनौती दी। एक बार जब ग्रंथ की केंद्रियता को चुनौती दी गई, ज्ञान के उत्पादन में अनुवाद की भूमिका को भी चुनौती दी गई। दूसरे शब्दों में, इसकी भूमिका ज्यादातर ज्ञान के उत्पादन के लिए एक साधन की हो गई। द्वितीय, हम पाते हैं कि प्राचीन भारत विद्या शास्त्रियों और बाद के मिशनरियों और उपयोगितावादियों के बीच, प्राचीन भारतीय ग्रंथों के अनुवाद के उद्देश्य में बदलाव आ गए। जहाँ प्राचीन भारत विद्या ाास्त्रि इंडो-यूरोपीयन भाषाशास्त्र के तलाश के अनुरूप चल रहे थे, मिशनरियों का अनुवाद का उद्देश्य इसाई धर्म प्रचार के मार्गदर्शन से और उपयोगितावादियों को भारत में ब्रिटिश शासन के अपने दा ानिक संपुष्टि से मार्गदर्शन मिल रहा था। इस प्रकार, दो अवधि के बीच, भारत विद्या से परे अनुवाद के उद्देश्यों में मौलिक परिवर्तन हुए।

3.5 सारांश

अब तक की गई चर्चा का सारांश प्रस्तुत करें। इस इकाई में, हमने दो चीजों की चर्चा करने की कोशिश की है, (क) भारत विद्या क्या है, और (ख) भारत विद्या का अनुवाद के साथ कैसा संबंध है। हमने देखा कि भारत विद्या ज्ञान के एक शाखा के रूप में कई चरणों में विकसित हुआ है। हमने यह भी देखा कि भारत विद्या ज्ञान के एक शाखा के रूप में कई चरणों में विकसित हुआ है। हमने यह भी देखा है कि इसके विकास के क्रम में एक अवधि से दूसरी अवधि में इसके प्रभाव में भी परिवर्तन आया। इस प्रकार, 18वीं शताब्दी के अंत और उन्नीसवीं सदी के पहले भारत विद्या की भूमिका और उसका प्रभाव 19वीं शताब्दी के भूमिका और प्रभाव से काफी अलग था। हमने यह भी देखा कि उन्नीसवीं सदी के अंत और बीसवीं सदी के पहले तक के नए खोजों ने भारत को व्याख्यायित करने के लिए भारत विद्या द्वारा दिए गए तर्कों को चुनौती भी दी। न सिर्फ भारत को व्याख्या करने वाले स्रोतों के रूप में संस्कृत ग्रंथों की केंद्रीयता को चुनौती दी गई, बल्कि उसके कानूनी और प्रशासनिक उपयोग में भी बदलाव आया। इस अवधि के दौरान, मानव जातीय विज्ञान जैसे ''जाति'' और ''जनजाति'' औपनिवेशिक विमर्श में महत्वपूर्ण रूप में सामने आया।

ये बदलाव अनुवाद के प्रश्न से गहराई से जुड़े हुए थे। जैसा कि पहले चर्चा कर दिया गया है (खंड 5.4 का आखिरी पैराग्राफ), परिवर्तन के परिणामस्वरूप अनुवाद दो प्रमुख रूपों में प्रकाि ात था। पहला, हमलोग देख चुके हैं कि अनुवाद के पीछे का उद्देश्य भारत विद्या के शुरुआती और बाद की अवधि के बीच बदल गयां अनुवादों को भारत

के व्याख्या की प्रकृति से जोड़ दिया गया। जब व्याख्या के पीछे का उद्देश्य बदला, व्याख्या की राजनीति, जो अनुवाद के कारण हुआ था, वह भी बदला। दूसरा, हम अनुवाद के मामले में यह भी देख चुके हैं, चाहे वह व्युत्पत्ति ाास्त्र के संदर्भ में या औपनिवेशिक कानूनों के निर्माण में, भारत की व्याख्या में संस्कृत (या अरबी-फारसी) ग्रंथों की केंद्रीयता का होना अनिवार्य था। एक बार जब वंश-विज्ञान, भाषा परिवार और पुरातत्व ज्ञान के क्षेत्र में नए खोजों द्वारा ग्रंथों की केंद्रीयता को चुनौती दी गई, इसके कारण औपनिवेशिक कानूनों के निर्माण में अनुवाद की प्रासंगिकता को भी चुनौती दी गई। अब औपनिवेशिक कानून का आधार मानव जाति-विज्ञान के दृष्टिकोण से देखा गया जो मुख्यतः ग्रंथों के बदले ब्रिटिश अफसरों और आविष्कारकों के विभिन्न आयामों के आधार पर किए गए कार्यों पर आधारित था। इस प्रकार, इस इकाई में हम यह देख चुके हैं कि अनुवाद की भूमिका और प्रासंगिकता जटिल रूप से भारत की व्याख्या के परिप्रेक्ष्य से जुड़ा हुआ था।

3.6 अभ्यास के लिए प्रश्न

1. कैसे संस्कृत ग्रंथों का अनुवाद औपनिवेशिक कानूनी संहिता कारण-प्रभाव संबंधों के निर्माण से संबंधित था। इसकी व्याख्या करें।
2. बाद की अवधि में प्राचीन भारत विद्या शास्त्रियों और मिशनरियों और उपयोगितावादियों के बीच अनुवाद का उपयोग और भूमिका की पहचान करें और उसके बीन के अंतरों की सूची बनाएँ।
3. क्या आप उपर्युक्त चर्चा में वर्णित भारत विद्या के प्रमुख आलोचनाओं से सहमत हैं? ये आलोचनाएँ अनुवाद से कैसे जुड़े हुए हैं?

3.7 शब्दावली

3.8 कुछ उपयोगी पुस्तकें

इकाई 4 अनुवाद और ईसाई मिशनरियों की भूमिका

इकाई की रूपरेखा

4.0 उद्देश्य

4.1 प्रस्तावना

4.2 उपनिवेशवाद एवं ईसाई मिशनरी

4.2.1 ईसाई मिशनरी और आधुनिक भारतीय भाषा

4.2.2 ईसाई मिशनरी : भाषा एवं अनुवाद

4.2.3 ईसाई मिशनरी और भारत में आधुनिक शिक्षा

4.3 सामुदायिक निर्माण में ईसाई मिशनरी की भूमिका

4.4 इसाई मिशनरी, अनुवाद एवं सामाजिक परिवर्तन

4.5 सारांश

4.6 अभ्यास एवं बोध प्र न

4.7 शब्दावली

4.8 कुछ उपयोगी पुस्तकें

4.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप जान पाएंगे :

- इसाई मिशनरी भारत कैसे आए और उनकी गतिविधियों का उपनिवेशवाद का क्या असर पड़ा,
- भारत में शिक्षा के विकास में ईसाई मिशनरियों का क्या योगदान रहा?
- इसाई मिशनरियों की गतिविधियों ने भारत में किस प्रकार सामाजिक परिवर्तन लाया?
- आधुनिक भारतीय भाषा तथा अनुवाद में मिशनरियों का क्या योगदान रहा?

4.1 प्रस्तावना

पिछले अध्याय में आपने 'इंडोलॉजी' (जिसके अंतर्गत भारतीय उपमहाद्वीप के इतिहास, संस्कृति एवं भाषा का अध्ययन किया जाता है) के बारे में पढ़ा कि यह एक विषय के रूप में किस प्रकार विकसित हुआ और अनुवाद ने इसके विकास में क्या भूमिका अदा की। इस इकाई में हम ईसाई मिशनरियों के कार्यक्रम तथा गतिविधियों के संबंध में अनुवाद की भूमिका एवं प्रकृति का अध्ययन करेंगे। हम चर्चा करेंगे कि ईसाई मिशनरियों ने किस प्रकार भारत में अपनी गतिविधियाँ शुरू की? हम इस पर भी चर्चा करेंगे कि ब्रिटि ा ईस्ट इंडिया कंपनी ने किस प्रकार ईसाई मिशनरियों की गतिविधियों में योगदान दिया। इस इकाई में इस पर भी विचार करेंगे कि भारत में किस प्रकार ईसाई मिशनरियों के संरक्षण में शिक्षा पद्धति का विकास हुआ और मिशनरियों ने किस प्रकार सामाजिक परिवर्तन लाया। इसके बाद भारतीय भाषाओं तथा मिशनरियों द्वारा प्रिंटिंग प्रेस की स्थापना और इन भाषाओं में पुस्तकों के प्रका ान से इन पर पड़ने वाले प्रभाव का अध्ययन किया जाएगा। उपर्युक्त संदर्भों के तहत ईसाई मिशनरियों तथा उनकी अनुवाद से संबंधित गतिविधियों को आसानी से समझा जा सकता है। बाइबिल का भारतीय भाषाओं में अनुवाद, स्कूल एवं कॉलेज की स्थापना तथा सामुदायिक निर्माण से संबंधित कार्यक्रम ऐसे ही संदर्भों का हिस्सा हैं।

4.2 उपनिवेशवाद एवं ईसाई मिशनरी

आइए, सबसे पहले यह जानें कि ईसाई मिशनरी किस प्रकार भारत आए तथा यहाँ कैसे काम शुरू किया? ईसाई मिशनरी यूरोपीय व्यापारियों के साथ भारत आए। रोमन कैथोलिक मिशनरियों ने 16वीं और 17वीं शताब्दी में ईसाई मिशनरियों के प्रचार के लिए काम किया। डेनमार्क तथा जर्मनी से आए प्रोटेस्टेंट मिशनरियों ने 18वीं सदी की शुरुआत से दक्षिण भारत में काम करना शुरू किया। वर्ष 1800 में बैपटिस्ट मिशनरियों ने श्रीरामपुर मुख्यालय से अपना काम शुरू किया। केरी, मार्शमैन तथा वार्ड शुरुआती दौर की पहली तीन बैपटिस्ट ईसाई मिशनरियां हैं। वर्ष 1830 में स्कॉटलैंड की प्रेस्बिटिरीअन मिशनरी के सदस्य एलेक्जेंडर डफ ने बंगाल में धर्म-परिवर्तन की अपनी गतिविधियां शुरू की। शुरुआत में ईसाई मिशनरियों की गतिविधियां केवल दक्षिण भारत तक सीमित थीं। उत्तर भारत और बंगाल में ईस्ट इंडिया कंपनी के अधिकारियों ने उनकी गतिविधियों को मान्यता नहीं दी। यहां के बा ंदों के सामाजिक-धार्मिक मामलों में दखल नहीं देना कंपनी की नीति थी। उनका मानना था कि इस तरह के हस्तक्षेप से कंपनी के वाणिज्यिक उद्देश्यों पर प्रतिकूल असर पड़ सकता है। मिशनरियों की धर्म-परिवर्तन की गतिविधियों ने कंपनी के वित्तीय उद्देश्यों के लिए खतरा पैदा कर दिया। परिणामस्वरूप, मिशनरियों को श्रीरामपुर में डेनमार्क के ठिकाने पर अपना मुख्यालय स्थापित करना पड़ा। हालांकि, कंपनी की इस तरह की मानसिकता 19वीं शताब्दी की शुरुआत में बदल गई। अब कंपनी ने विभिन्न नीतिगत पहलों के माध्यम से भारतीयों को 'सभ्य' बनाने में रुचि दिखाई। इसका परिणाम यह हुआ कि चार्टर अधिनियम, 1813 के द्वारा मिशनरी गतिविधियों पर से प्रतिबंध हटा लिया गया। इसकी पुटि वर्ष 1854 में सर चार्ल्स वुड की ओर से भेजी गई उन वि .ाा सूचना जिन्हें 'डिस्पेच' के नाम से जाना गया, जिसमें मिशनरियों को उनके स्कूलों एवं कॉलेजों के लिए सरकार से अनुदान प्राप्त करने की अनुमति दी गई।

ईस्ट इंडिया कंपनी शुरुआत में एक वाणिज्यिक उपक्रम था और यह लोगों के सामाजिक कल्याण को लेकर बहुत अधिक चिंतित नहीं थी। लेकिन वर्ष 1614 की शुरुआत में लोगों को ईसाई धर्म के बारे में बताने के लिए कंपनी के खर्च पर मिशनरियों की नियुक्ति की गई। वर्ष 1659 में 'कोर्ट ऑफ डायरेक्टर्स' ने स्पष्ट कहा कि यह उनकी हार्दिक इच्छा है कि भारतीय लोगों के बीच ईसाई धर्म का प्रचार किया जाए और ईसाई मिशनरियों को इस दिशा में काम करने की अनुमति दी जाए। वर्ष 1698 में जब कंपनी के चार्टर में संशोधन किया गया तो संसद ने इसमें प्रसिद्ध मिशनरी धारा जोड़ी। इस धारा के जरिये कंपनी को निर्दे ा दिया गया कि वह भारत में अपनी सभी फैक्ट्रियों में धार्मिक मामलों के मंत्री की नियुक्ति करे और 500 टन या इससे अधिक वजनी प्रत्येक जहाज पर पादरी की नियुक्ति करे। चार्टर में कंपनी को यह भी निर्दे ा दिया गया कि जहां आवश्यकता हो, वहाँ स्कूल भी खोले जाएँ।

हालांकि चार्टर अधिनियम, 1698 ने भारत के लोगों के लिए नहीं, बल्कि कंपनी के कर्मचारियों के बच्चों के लिए शिक्षा की आधारि ाला रखी। इसके तहद सभी तीन प्रेजीडेंसी शहरों-कलकत्ता, मद्रास और बम्बई में पादरियों की नियुक्ति की गई। उन्होंने इसे ईसाई यूरोपीय बच्चों तथा कंपनी के सैनिकों एवं उनकी भारतीय पत्नियों से होने वाले एंग्लो-इंडियन बच्चों को शिक्षा देने की अपनी धार्मिक जिम्मेदारी की तरह लिया। एंग्लो-इंडियन बच्चों की शिक्षा के लिए चौरिटी स्कूल खोले गए। इन स्कूलों के नाम ब्रिटि ा नामों वि .ाकर ईसाई संतों के नाम पर रखे गए और इनके जरिये संकेत देने की कोशिश की गई कि ये स्कूल प्राथमिक तौर पर गरीब या अनाथ बच्चों के लिए हैं।

ईस्ट इंडिया कंपनी के क्षेत्राधिकार में सबसे पहले डेनमार्क की मिशनरियों ने काम करना शुरू किया। इन मिशनरियों के प्रवर्तक जिगेनबाल्ग (पमहमदइंसह) तथा प्लस ाउ (च्सनेजेबींन) थे, जिन्होंने वर्ष 1706 में ट्रांकेबार से अपनी गतिविधियां शुरू की, जो दक्षिण में डेनमार्क की एक छावनी थी। हालांकि वर्ष 1813 से पहले मिशनरी कार्यों का विकास बहुत कम हुआ था, इसका पहला और सबसे महत्वपूर्ण कारण ईस्ट इंडिया कंपनी का इसके प्रति प्रतिकूल रवैया था। कंपनियों का रवैया 1765 से पहले मिशनरियों के प्रति आम तौर पर अनुकूल था। लेकिन कंपनी जैसे ही भारत में राजनीतिक इच्छा शक्ति पनपी, कंपनी ने सख्ती के साथ धार्मिक निपक्षता बनाए रखने की कोशिश की। वेल्लोर में सिपाही विद्रोह जैसी घटनाओं ने कंपनी के इस संकल्प को अधिक मजबूत बना दिया और वर्ष 1800 तक कंपनी धर्म-परिवर्तन जैसी गतिवधियों की कट्टर विरोधी हो गई तथा उसने मिशनरियों को अपने अधिकार क्षेत्र के बाहर रखने की कोशिश की।

4.2.1 ईसाई मिशनरी और आधुनिक भारतीय भाषाएँ

उपर्युक्त संक्षिप्त जानकारी के बाद आइए हम भारतीय भाषाओं के प्रति ईसाई मिशनरियों की भूमिका एवं योगदान पर ध्यान केंद्रित करें। भारतीय भाषाओं से अंग्रेजी में अनुवाद वर्ष 1785 में शुरू हुआ और शुरुआत में सभी अनुवाद संस्कृत से थे। इस ओर तत्काल लोगों का ध्यान गया और इसे यूरोप द्वारा खोजी गई सर्वाधिक रोमांचक सांस्कृतिक खोजों में से एक कहा गया। सर विलियम जोन्स ने वर्ष 1796 में संस्कृत को अद्‌भुत संरचना वाली, ग्रीक से बेहतर, लैटिन से अधिक व्यापक और किसी भी अन्य भाषा से अधिक परिष्कृत घोषित किया। संस्कृत की खोज के साथ तुलनात्मक भाषा-विज्ञान शुरू हुआ, जिससे भाषाओं के भारतीय-यूरोपीय परिवार की अवधारणा का विकास हुआ। हालांकि, दोनों भाषाओं का यह मिलन मिशनरियों तथा ईस्ट इंडिया कंपनी के स्वार्थ के बगैर नहीं हुआ था। इस वक्त कंपनी भारत में शासन कर रही थी और केवल व्यापार कंपनी नहीं रह गई थी। कंपनी वैधानिक संधियों तथा सरकारी कामकाज के अनुवाद, भारतीय भाषा के व्याकरण के अनुवाद तथा शब्दको ा के संकलन के लिए अच्छा भुगतान कर रही थी। कंपनी के ब्रिटि ा कर्मचारियों को भारतीय भाषाओं में प्रशिक्षण देने के लिए वर्ष 1800 में कलकत्ता में क०लेज ऑफ फोर्ट विलियम की स्थापना की गई। वर्ष 1772 से 1785 तक भारत के गवर्नर रहे वारेन हेस्टिंग्स के कार्यकाल से ही इसे भारत के लोगों को बेहतर ढंग से समझने के लिए एक नीति के रूप में चिह्नित किया गया, ताकि उन पर बेहतर तरीके से शासन किया जा सके।

इसाई मिशनरियों ने अपने धार्मिक विश्वासों के प्रचार के लिए स्थानीय भाषा का इस्तेमाल किया। उन्होंने प्रिटिंग प्रेस शुरू किया, साप्ताहिक व समाचार-पत्रें का प्रका ान शुरू किया। अपने स्कूलों में उन्होंने शब्दको ा, व्याकरण तथा अच्छी तरह संपादित उत्त . ठ साहित्य मुहैया कराना शुरू किया। इस संदर्भ में रेव. कित्तेल के वर्ष 1894 के कन्नड़-अंग्रेजी शब्दकोश का उल्लेख किया जा सकता है। अपने समाचार-पत्रों एवं साप्ताहिक पत्रिकाओं में मिशनरियों ने साधारण गद्य का इस्तेमाल करना शुरू किया। उन्होंने बाइबिल के अनुवाद की परियोजना भी शुरू की। उदाहरण के लिए, बाइबिल का कन्नड़ भाषा में अनुवाद वर्ष 1820 के शुरुआती समय में ही आ गया था। अंग्रेजी के लेखक ज्हान बनयन *पिलग्रिम्स प्रोग्रेस (Pilgrims Progress)* का कन्नड़ भाषा में अनुवाद वीगेल तथा मोगलिंग ने किया, जिसका प्रका ान वर्ष 1847 में किया गया। विलियम केरी और जु ुआ मार्शमैन ने *रामायण* का अनुवाद किया। अनुवादकों ने संस्कृत पाठ का शाब्दिक अनुवाद करना शुरू किया। विलियम केरी असाधारण भाषाई क्षमता के धनी व्यक्ति थे। भारत आने से पहले उन्होंने करीब छह भाषाओं में महारत हासिल कर ली थी। बाद में उन्होंने भारतीय भाषाओं में बाइबिल के अनुवाद में विशेष भूमिका निभाई।

इसाई मिशनरियों ने आधुनिक भारतीय भाषाओं में ब्रिटि ा अधिकारियों से पहले रुचि लेना शुरू कर दिया था। फादर क्लीमेंट द्वारा लिखित Compendium Doctrine Christiana पर आधारित मलयालम गद्य की पहली पुस्तक *संक्षेप वेदरथम (Smksepa Vedartham)* का मुद्रण रोम में वर्ष 1772 में हुआ। इतालवी मिशनरी र०बर्टो डे न०बिली ने तमिल गद्य लिखा, जो 17वीं शताब्दी के पहले दशक में मदुरै आए थे। इसी तरह, बहुमुखी प्रतिभा के धनी जोसेफ बे ाी (श्रवेमची ठमेबीप) ने तमिल बोलचाल का व्याकरण, एक शब्दको ा, यी ु की जिंदगी पर आधारित ग्रंथ, ईसाई धर्म उपदेशकों की जिम्मेदारियों और एक गुरु के जीवन पर आधारित व्यंग्यात्मक गद्य लिखा।

बांग्ला में भी पुर्तगाल के मैनुअल डे असम्पकाओ (Manuel de Assumpcao) और मूल ईसाई डॉम एंटोनियो ने वर्ष 1743 में ईसाई सिद्धांत लिखे। *द न्यू टेस्टामेंट (The New Testament)* का तेलुगू भाषा में अनुवाद बेंजामिन शुल्ज ने 18वीं शताब्दी के मध्य में किया। वर्ष 1800 में श्रीरामपुर मिशन की स्थापना और वर्ष 1834 में केरल में चर्च मिशन सोसाइटी तथा कर्नाटक में बैसल मिशन द्वारा काम शुरू करने के बाद बाइबिल, ईसाई धर्म से संबंधित अन्य पुस्तकों, शब्दकोशों एवं व्याकरणों के अनुवाद से संबंधित कार्य में वृद्धि हुई। मिशनरियों ने जब विभिन्न इलाकों में स्कूल खोले तो उन्होंने बच्चों के लिए पाठ्यसामग्री भी स्वयं ही बनानी शुरू की। मिशनरियों ने सर्वाधिक महत्वपूर्ण योगदान शैक्षणिक सामग्री, शब्दकोश तथा व्याकरण विकसित करने में किया, जिनमें से अधिकतर स्थानीय व्याकरण तथा शब्दकोशों के लिए आद ा बने। लेकिन मिशनरी के गद्य नकलमात्र नहीं थे। बाइबिल के अधिकतर अनुवादों, जो मूल हिब्रू (यहूदी भाषा) तथा ग्रीक पाठों से किए गए थे, में लक्ष्य भाषा के मानकों का खयाल नहीं रखा गया था। मिशनरी गद्य शैली की व्याख्या इसकी अस्वाभाविक एवं अनोखेपन के

कारण अक्सर अजीब तरीके से *पादरी मलयालम, पादरी बांग्ला या बाइबिल तेलुगू* के रूप में की गई। हालांकि ये संगत एवं विवरणात्मक गद्य लेखन में पहला गंभीर प्रयोग था।

मिशनरियों एवं ईस्ट इंडिया कंपनी के अधिकारियों के प्रयास क०लेज ऑफ फोर्ट विलियम में मिल गए। श्रीरामपुर मिशन में उन्होंने साथ मिलकर काम किया। क०लेज ऑफ फोर्ट विलियम ने ईस्ट इंडिया कंपनी के अधिकारियों के लिए भारत के बारे में किताबों का प्रका ान शुरू किया। ये किताबें ब्रिटि ा विद्वानों की निगरानी में स्थानीय विद्वानों ने तैयार की। इनमें से कुछ काम संस्कृत से और कुछ फारसी से अनुवाद हुए थे। फोर्ट विलियम कॉलेज के विद्वानों ने गद्यों की विभिन्न शैली के साथ प्रयोग किए। विभिन्न लेखकों ने अलग-अलग शैलियों में और एक ही लेखक ने विभिन्न शैलियों में किताबें लिखी। मिशनरी तथा कंपनी के अधिकारियों द्वारा लिखे गए गद्य ने भारतीयों को गद्य के माध्यम से अपने विचारों की अभिव्यक्ति की संभावनाओं के प्रति सचेत कर दिया।

4.2.2 ईसाई मिशनरियाँ, भाषा एवं अनुवाद

अब तक हमने भारतीय भाषाओं तथा समाज के प्रति ईसाई मिशनरियों के कार्यक्रम एवं गतिविधियों और उनकी भूमिका तथा योगदान के बारे में पढ़ा। हमने इस संदर्भ में अनुवाद को भी संक्षेप में समझा। अब आइये, उपर्युक्त संदर्भ में अनुवाद के सवाल पर व्यापक रूप से विचार करें। मिशनरी बाइबिल के उपदेश तथा पि चमी शिक्षा के प्रसार द्वारा मुख्य रूप से ईसाई धर्म के प्रचार में जुटे थे। मिशनरियों ने आधुनिक भारतीय समाज के विकास में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। बाइबिल तथा अन्य पि चमी ग्रंथों का भारतीय भाषाओं में अनुवाद कर मिशनरियों ने भारतीय साहित्य तथा भाषा के विकास में महत्वपूर्ण योगदान दिया। उदाहरण के लिए, 19वीं सदी के मध्य तथा उसके बाद असमी भाषा में अमेरिकन बैपटिस्ट मिशनरियों की महत्वपूर्ण भूमिका रही। कुछ मिशनरियों के पास भारतीय भाषाओं में बड़े विद्वान थे। उदाहरण के लिए, मदुरै में रह रहे र०बर्टो डे नबिली (Roberto de Nobili) संस्कृत, तेलुगू तथा तमिल भाषा के बड़े विद्वान थे। उन्होंने तेलुगू तथा तमिल भाषा में किताबें लिखीं। डेनमार्क के पादरी जीजेनबाल्ग (iegenbalg) ने बाइबिल का तमिल भाषा में अनुवाद किया और उसी भाषा में व्याकरण लिखा। शुल्ज (Schult) ने बाइबिल का तेलुगू में अनुवाद किया। गोवा में 16वीं सदी के उत्तरार्द्ध से 17वीं सदी के पूर्वार्द्ध तक काम करने वाले अंग्रेज कैथोलिक पादरी थ०मस स्टीफेंस ने कोंकणी भाषा में 'क्रिश्चियन पुराण' लिखा, जिसमें ईसा के जन्म से उनके पुनःजी उठने की बाइबिल की कहानी है। बैपटिस्ट मिशनरियों ने श्रीरामपुर में प्रिंटिंग प्रेस स्थापित किया और बाइबिल का अनुवाद 40 भारतीय भाषाओं में प्रकाशित किया। बंगाल में उन्होंने तीन पत्रिकाएं निकालीं - अंग्रेजी में फ्रेंड ऑफ इंडिया (Friend of India) और बांग्ला में *दिग्दर्शन* व *समाचार दर्पण।*

मिशनरी स्कूलों ने भारतीय भाषाओं का इस्तेमाल बच्चों को पढ़ाने के माध्यम के रूप में किया। लेकिन उन्होंने इन बच्चों को अंग्रेजी भाषा भी सिखाई। कंपनी ने इन स्कूलों को वित्तीय सहायता तथा संरक्षण भी दिया। हालांकि, कलकत्ता में मिशनरियों को प्रतिकूल वातावरण में काम करना पड़ा और श्रीरामपुर स्थित डच स्थानों पर निर्भर रहना पड़ा। जैसा कि ऊपर भी कहा गया है, बैपटिस्ट मिशनरी सोसाइटी के प्रतिनिधि विलियम केरी के बाद वर्ष 1793 में किर्नांडर (Kiernander) बंगाल में अग्रणी मिशनरी थे। उन्होंने कुछ समय तक कलकत्ता में काम किया और फिर मालदा चले गए, जहां उन्होंने एक नील की फैक्ट्री का संचालन किया और खाली वक्त का इस्तेमाल बाइबिल ''न्यू टेस्टामेंट'' *The New Testament* का अनुवाद बांग्ला में करने, रियासतों में सरकारी कर्मचारियों के लिए प्रतिदिन धार्मिक सेवा आयोजित करने, पड़ोसी गांवों को धार्मिक शिक्षा देने और स्वयं द्वारा स्थापित स्कूलों का निरीक्षण करने में किया। वर्ष 1799 में वार्ड तथा मार्शमैन नामक दो अन्य मिशनरी भी कलकत्ता पहुँचे। उनका मूल उद्देश्य उत्तरी बंगाल में केरी के कार्यों में उनके साथ जुड़ना था, लेकिन उन्होंने पाया कि ईस्ट इंडिया कंपनी उन्हें ऐसा नहीं करने देगी। इसलिए उन्होंने केरी को अपने साथ जुड़ने के लिए समझाया और कलकत्ता से 15 किलोमीटर दूर श्रीरामपुर स्थित डच प्रतिष्ठान में बसने का फैसला किया। श्रीरामपुर तिकड़ी के नाम से मशहूर इन तीनों दोस्तों ने अपना मिशनरी से संबंधित काम उत्कृष्टता के साथ किया। केरी बहुत बड़े प्रचारक थे, तो वार्ड कुशल प्रिंटर और मार्शमैन अच्छे स्कूल शिक्षक थे। उन्होंने बाइबिल का अनुवाद एवं मुद्रण 31 भारतीय भाषाओं तथा बोलियों में किया और उपयोगी विषयों पर कई पुस्तकें जारी कीं। बाइबिल के अनुवाद एवं मुद्रण के अतिरिक्त श्रीरामपुर की इस तिकड़ी ने श्रीरामपुर, कलकत्ता तथा अन्य स्थानों पर लड़के एवं लड़कियों के लिए कई स्कूल भी खोले।

4.2.3 इसाई मिशनरियाँ और भारत में आधुनिक शिक्षा

भारतीय भाषाओं तथा अनुवाद में मिशनरियों के योगदान की प्रकृति एवं भूमिका का अध्ययन उनकी संपूर्ण गतिविधियों से अलग नहीं किया जा सकता। इस अध्याय में हम उनके शैक्षणिक कार्यक्रम तथा उस संबंध में अनुवाद की प्रासंगिकता पर वि .ोा ध्यान देंगे। हम इस सवाल के साथ शुरुआत कर सकते हैं कि अनुवाद की राजनीतिक को समझने के लिए शिक्षा का संदर्भ महत्वपूर्ण क्यों है? इस अध्याय में हम यह समझने की कोशिश करेंगे, है कि शिक्षा का संदर्भ किस तरह का अनुवाद भारत में मिशनरियों के लिए क्यों महत्वपूर्ण बना?

1698 के बाद के वर्षों में कंपनी के पादरियों ने पुर्तगाली क्षेत्र में स्कूल खोले, जैसा कि कंपनी के चार्टर में निर्देश दिया गया था, जो कंपनियों में सार्वजनिक भाषा थी। लेकिन यह सफल नहीं रहा और अंग्रेजी को माध्यम के रूप में अपनाया गया। इस मॉडल पर खोला गया सबसे पुराना सेंट मैरीज चैरिटी स्कूल नामक चैरिटी स्कूल था। जिसकी स्थापना 1715 में रेव. डब्ल्यू. स्टीवेंसन ने मद्रास में की थी। वर्ष 1719 में एक अन्य चैरिटी स्कूल की स्थापना बम्बई में रेव. रिचर्ड कोब नेक की। कलकत्ता के पादरी बेलामी ने वर्ष 1720 से 1731 के बीच ऐसे ही चैरिटी स्कूल की स्थापना की। विभिन्न संस्थाओं के लिए अनुदान एकत्र करने में अग्रणी भूमिका निभाने वाले गवर्नर की पत्नी लेडी कैम्बेल के नाम पर मद्रास में वर्ष 1787 में महिला अनाथालय खोला गया। उसी साल मद्रास में पादरी रेव. ड०. एंड्रयू बेल ने एक पुरुष आश्रय स्थल खोला। यह सवाल उठता है कि मिशनरियों ने स्कूलों की स्थापना क्यों की और अन्य शैक्षणिक संस्थाओं को अपने अधीन क्यों किया? यह जानना भी महत्वपूर्ण है कि मिशनरियों ने स्कूलों की स्थापना क्यों की और अन्य शैक्षणिक संस्थाओं को अपने अधीन क्यों किया? इसका उद्देश्य ईसाई धर्म का प्रसार प्रचार तथा लोगों का धर्म परिवर्तन कराना था। कंपनी तथा उपनिवे ाकों को धर्म परिवर्तन अनुकूल इसलिए था क्योंकि ऐसा कर वे स्थानीय लोगों पर आसानी से नियंत्रण रख सकते थे। मिशनरियों के शुरुआती इतिहास में एक ऐसा वक्त था जब मिशनों के गृह मामलों के प्राधिकरण ने उनकी शैक्षणिक गतिविधियों को समर्थन देने से इंकार कर दिया था, क्योंकि उनका मानना था कि मिशनरियों का स्कूलों की स्थापना से कोई लेना-देना नहीं है। हालाँकि, कुछ मिशनरियों का मानना था कि लोगों को शिक्षित करना महत्वपूर्ण है, क्योंकि वे तभी धर्मग्रंथों को ठीक से समझ पाएंगे। इसके अतिरिक्त, अधिकतर धर्म परिवर्तन समाज के सबसे निचले तबके से हुआ। उन्हें शिक्षा देना आवश्यक हो गया, क्योंकि तभी वे बाइबिल पढ़ पाएंगे, जो मुक्ति के लिए आवश्यक है। इसी वजह से उन्होंने प्रिंटिंग प्रेस की भी स्थापना की, बाइबिल का अनुवाद एवं मुद्रण भारतीय भाषाओं में किया। पेशेवर स्कूल भी खोले गए, ताकि धर्म परिवर्तन करने वालों को नौकरियां मिल सके और वे बेहतर तरीके से जीवन यापन कर सकें।

हम पहले ही डेनमार्क मिशन के बारे में पढ़ चुके हैं, जो ईस्ट इंडिया कंपनी के अधिकार क्षेत्र में काम करने वाले पहले मिशनरी थे। इस मिशन के प्रवर्तक जीजेनबाल्ग और प्लसाउ थे, जिन्होंने वर्ष 1706 में दक्षिण के ट्रांकेबार स्थित डेनमार्क के ठिकाने पर अपनी गतिविधियां शुरू की। तमिल में प्रिंटिंग प्रेस की स्थापना 1713 में की गई। शिक्षकों को प्रशिक्षित करने के लिए वर्ष 1716 में ट्रांकेबार में एक संस्थान खोला गया और उसके बाद के वर्ष में मद्रास में दो चैरिटी स्कूल खोले गए, एक पुर्तगाली और दूसरा तमिल बच्चों के लिए। मद्रास में ग्रंडलर (Grundler) ने वर्ष 1717 से कुछ समय पहले यूरोपीय बच्चों के लिए पुर्तगाली तथा भारतीय बच्चों के लिए मालाबार स्कूल खोले। वर्ष 1742 में किर्नांडर (Kiernander) ने फोर्ट सेंट डेविड के नजदीक यूरोपीय-एशियाई और भारतीय बच्चों के लिए चैरिटी स्कूल खोले। उनके काम को खूब प्रचार मिला, जिसके बाद रॉबर्ट क्लाइव ने वर्ष 1758 में उन्हें कलकत्ता बुलाया, जहां उन्होंने चैरिटी स्कूल की स्थापना की। उन्होंने बंगाल में काम करना जारी रखा और वर्ष 1772 में यूरोपीय तथा यूरोपीय-एशियाई लड़कों के लिए त्रिचोनोपोली में और तंजौर में मैसूर के हैदर अली की वित्तीय सहायता से अंग्रेजी चैरिटी स्कूल खोले गए। भारतीय बच्चों को अंग्रेजी पढ़ाने के लिए तंजौर निवासी जॉन सुलीवन की सहायता से उन्होंने तंजौर में तीन स्कूल खोले। इन स्कूलों में खुले तौर पर ईसाई धर्म की शिक्षा नहीं दी गई। 'कोर्ट ऑफ डायरेक्टर्स' इससे खु ा थे और जिसके फलस्वरूप उन्होंने प्रत्येक स्कूल के लिए 250 पैगोडा (सोने के सिक्के) का अनुदान मंजूर किया।

लेकिन, जैसा कि हमने पहले भी चर्चा की है, जैसे ही कंपनी भारत में राजनीतिक शक्ति बनी, इसने धार्मिक निष्पक्षता बहाल रखने की कोशिश की। ताकि स्थानीय लोगों की धार्मिक भावनाओं को ठेस पहुँचाए वगैर वे अपना कार्य कर सकें। मिशनरी लोग इन परिवर्तनों को पसंद नहीं करते थे और उन्होंने कंपनी की इन नीतियों की आलोचना करनी शुरू कर दी तथा पुरानी नीति बहाल करने की अपील की। वर्ष 1793 में जब कंपनी के चार्टर में सं ोधन किया गया तो चार्ल्स विल्बरफोर्स ने यह प्रस्ताव दिया कि यह ब्रिटि ा व्यवस्थापिका की जिम्मेदारी है कि वह अपने शासन के अधीन 'उपयोगी ज्ञान की उन्नति' तथा लोगों की 'धार्मिक एवं नैतिक बेहतरी' के लिए कदम उठाए। लेकिन 'कोर्ट ऑफ डायरेक्टर्स' ने इसका विरोध किया और यह प्रस्ताव खारिज कर दिया गया। इस हार ने मिशनरियों को बड़ा झटका दिया। इसके बाद मिशनरियों ने न केवल कंपनी की नीतियों की, बल्कि उनके व्यक्तिगत आचरण की भी आलोचना करनी शुरू कर दी। वर्ष 1793 के बाद मिशनरियों तथा कंपनियों के संबंध तनावपूर्ण हो गए। व र्ा 1793 और 1813 के बीच कंपनी ने अपने क्षेत्र में किसी भी मिशनरी कार्यकर्ता को काम करने की अनुमति नहीं दी और ऐसे कई मिशनियों को निष्कासित कर दिया, जिन्होंने लोगों का धर्म परिवर्तन कराने की कोशिश की। इस दौरान मिशनरी स्कूलों को कोई अनुदान नहीं दिया गया। भारत में मि ानिओं के पास कोई अब शक्ति नहीं थी। लेकिन इंग्लैंड में उनके मित्र थे और वहां उन्होंने कंपनी की नीतियों के खिलाफ प्रदर्शन शुरू कर दिया। भारत में आधुनिक शिक्षा के जनक कहे जाने वाले चार्ल्स ग्रांट ने *''bservations on the States of Society among the Asiatic Subjects of Great Britain, particularly with Respect to Morals; and the Means of Improving it*'* अर्थात् ''नैतिकता उसमें सुधार के साधनों के वि ाा संदर्भ में ग्रेट बिट्रेन की एशियाई प्रजा के समाज के समाज की स्थिति पर टिप्पणियाँ'' लिखा, जो 1797 में प्रकाशित हुआ। इसके जरिये उन्होंने जो पहली बात रखी, वह यह थी कि ब्रिटिश नागरिक भारतीय समाज की अनैतिक एवं दुर्भाग्यपूर्ण स्थिति को समझते हैं। हालाँकि, उन्होंने भारतीय समाज का जो चित्रण किया था वह बहुत अतिशयोक्तिपूर्ण था। उनके अनुसार, उपेक्षा तथा एक उचित धर्म की चाह भारतीय समाज के अधोपतन की स्थिति का मुख्य कारण है और इस स्थिति को उचित शिक्षा तथा ईसाई धर्म परिवर्तन के जरिए ही बेहतर बनाया जा सकता है। उन्होंने भारतीय लोगों को अंग्रेजी भाषा, पश्चिमी दर्शन तथा ज्ञान प्रदान करने का भी पराम र्ा दिया। ग्रांट की इस पुस्तक ने नई राह दिखाई, क्योंकि इसके प्रकाशन के बाद वर्ष 1813 के चार्टर अधिनियम में कई शैक्षणिक धाराएँ जोड़ी गईं। ग्रांट के विचारों को वैधता इस बात से मिली कि उन्हें भारत के बारे में जानकारी थी, वह कंपनी के प्रभावी निदेशक और संसद के सदस्य थे।

इंग्लैंड में जब मिशनरी कंपनी की शैक्षणिक नीतियों में परिवर्तन के लिए प्रद र्ान कर रहे थे तो भारत में भी कंपनी के अधिकारी पूर्वी शिक्षा के लिए प्रद र्ान कर रहे थे। उन्हें लगता था कि कलकत्ता मदरसा तथा बनारस संस्कृत महाविद्यालय इसके लिए पर्याप्त नहीं हैं। उन्हें लगता था कि परंपरागत हिन्दू एवं मुस्लिम शिक्षा का पतन हो रहा था और उनकी पुरानी गरिमा लौटाने के लिए अधिक धनराशि तथा अनुवाद की आवश्यकता थी। ऐसे वक्त में वर्ष 1811 में लॉर्ड मिंटो ने कहा कि पूर्वी साहित्य पश्चिमी राष्ट्रों के लिए भी उपयोगी होंगे। उनका मानना था कि अंग्रेजी को इस साहित्य के विकास पर ध्यान देना चाहिए। इसके बाद मिशनरियों तथा पूर्वी शिक्षा के समर्थकों या कंपनी के अधिकारियों के बीच तीव्र विवाद पैदा हो गया।

ऐसी स्थिति में वर्ष 1813 में चार्टर अधिनियम में सं ोधन लाया गया। इसमें मिशनरी तथा उनके मित्रें को स्पष्ट जीत मिली। इस अधिनियम के अनुसार, मिशनरियों को भारत में आने तथा यहां रहने की अनुमति दी गई। उन्हें धार्मिक उपदेश देने, चर्च की स्थापना करने तथा मिशनरी जिम्मेदारियों के निर्वाह की अनुमति दी गई। वर्ष 1813 का चार्टर अधिनियम भारतीय शिक्षा के क्षेत्र में परिवर्तनकारी कदम साबित हुआ। इसके साथ ही उस विरोध का सफलतापूर्वक अंत हो गया, जिसका नेत त्व ग्रांट और विल्बरफोर्स पिछले करीब 20 वर्षों से कर रहे थे। कंपनी ने शैक्षणिक गतिविधियों पर सालाना एक नि चत राशि खर्च करने का निर्णय लिया। मिशनरियों ने बड़ी संख्या में भारत आना शुरू किया। हमने इस सवाल के साथ शुरू किया था कि उपर्युक्त संदर्भ किस प्रकार अनुवाद की राजनीति के लिए प्रासंगिक है। हम पहले ही इसका जिक्र कर चुके हैं कि ईसाई मिशनरियों की पहल पर किस तरह के अनुवाद हो रहे थे। हम इसका भी उल्लेख कर चुके हैं कि औपनिवेशिक काल के दौरान आधुनिक भाषा एवं साहित्य के विकास से इन कदमों का क्या संबंध है। शिक्षा का सवाल हमें अनुवाद की प्रकृति एवं क्षेत्र के औचित्य की व्याख्या करने में हमारी मदद करता है, जिसका मिशनरियों ने भारतीय संदर्भ में उल्लेख किया है।

4.3 सामुदायिक निर्माण में ईसाई मिशनरियों की भूमिका

आइये अब हम औपनिवेशिक भारत में मिशनरी गतिविधियों, अनुवाद एवं सामाजिक परिवर्तन के बीच संबंध पर संक्षित चर्चा करें। अब तक की चर्चा में हमने ब्रिटि ा भारत की विभिन्न भाषाओं एवं धर्मों में मिशनरियों की भूमिका को जाना। इस अध्याय में हम सामाजिक परिवर्तन एवं सामुदायिक निर्माण में मिशनरियों की महत्वपूर्ण भूमिका का अध्ययन एक 'केस स्टडी' के माध्यम से करेंगे। इस क्रम में हम असम में उनके कार्यक्रमों तथा गतिविधियों को रेखांकित करने का प्रयास करेंगे। जब अमेरिकी बैपटिस्ट मिशनरियां असम पहुंचीं और अपना काम शुरू किया तो ब्रिटि ा सरकार ने उस क्षेत्र में बांग्ला को आधिकारिक भाषा घोषित किया। मिशनरियों के लिए यह एक बड़ी बाधा थी। यदि मिशनरियों की गतिविधियां सफल होती तो विभिन्न कार्यक्रमों एवं गतिविधियों में स्थानीय भाषा के लिए स्थिति गंभीर होती। 19वीं सदी के मध्य तक बैपटिस्ट मिशनरियों ने उस प्रांत में असमी को आधिकारिक भाषा का दर्जा देने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। उन्होंने इसके लिए न केवल छोटी पुस्तिकाएँ लिखी, बल्कि अपने तर्क के पक्ष में एक पत्रिका (अरुणुदोई), शब्दकोश तथा व्याकरण पर किताबें भी निकाली। 19वीं सदी के उत्तरार्द्ध में प्रांत में आधिकारिक भाषा के परिवर्तन के आवाज कई तरफ से उठी। ये आवाजें उस काल में दक्षिण एशिया में राजनीतिक पहचान के निष्पादक के रूप में उभरने वाली भाषा से संबंधित थीं। खासकर असम में, इस तरह की आवाजें असमी भाषा पर ईसाई मिशनरियों के कार्यों से अधिक उठीं। इसके अतिरिक्त उस शताब्दी के आखिरी के आधे वर्ष ऐसे काल थे जब असमी के लिए भाषाई आधुनिकीकरण तथा वर्गीकरण किए जा रहे थे। वर्ष 1840 के दशक से 1900 के दशक के बीच वास्तव में दो चरण रहे, जब आधुनिक असमी भाषा का संहिताकरण अस्तित्व में आया। पूर्व औपनिवेशिक काल में हुए संहिताकरण की दो प्रमुख विशेषताएँ थीं (अ) व्याकरण पर आधारित थे और (ब) सिबसागर क्षेत्र (पूर्वी असम घाटी) में बोली जाने वाली भाषा को पूरे प्रदेश के लिए भाषाई मानक के रूप में लिया गया। दोनों मामलों में मिशनरियों की छाप स्पष्ट थी। मिशनरियों ने वर्ष 1840 से 1860 के दशक के दौरान तर्क दिया था कि असमी को बांग्ला भाषा से जो चीज अलग करती है, वह सिर्फ शब्द संरचना नहीं, बल्कि स्वर विज्ञान भी है। इस प्रकार, शब्दों के मूल की तुलना में अधिक महत्वपूर्ण यह है कि वह भाषा बोली कैसे जाती है? सिबसागर में बोली जाने वाली भाषा ही क्यों या कैसे भाषा का मानक बनी, तो इसके पीछे का तथ्य यह है कि उस क्षेत्र की आर्थिक एवं सांस्कृतिक समृद्धि के साथ-साथ वहां मौजूद मिशनरियों ने भी इसमें महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। वास्तव में मिशनरी के बहुत से प्रका ान भी असंगत थे। इसके अतिरिक्त, इस तथ्य ने भी इसमें महत्वपूर्ण भूमिका निभाई कि सिबसागर असमी का इस्तेमाल ही मुद्रण में किया जाता था, जिसकी शुरुआत मिशनरियों ने की थी और सफलतापूर्वक इसे आगे भी बढ़ा रही थीं।

जैसा कि पूर्व के अध्याय में चर्चा की जा चुकी है, मिशनरियों ने बाइबिल, ईसाई सिद्धांतों पर आधारित जीवन से जुड़ी नैतिक शिक्षा की पुस्तिकाएँ, बाल साहित्य तथा शैक्षणिक एवं वैज्ञानिक पुस्तिकाओं का अनुवाद मुद्रित किया, जिनमें अधिकतर अनुवाद अंग्रेजी से थे। मिशनरियों ने अपनी गतिविधियों के लिए प्रिंटिंग प्रेस जैसी प्रौद्योगिकी का इस्तेमाल किया। लेकिन प्रिंटिंग प्रेस प्रौद्योगिकी के लिए भी स्थानीय भाषा के साथ-साथ शिक्षा या साक्षरता की आवश्यकता थी, ताकि धार्मिक शिक्षा एवं धर्म तथा इसके सिद्धांतों पर आधारित जीवन का प्रचार व्यापक स्तर तक पहुँच सके। इस प्रकार, हम पाते हैं कि विषय-वस्तु का अनुवाद, भाषा का मानकीकरण तथा शैक्षणिक पहल एक-दूसरे से जुड़े थे।

इस प्रक्रिया ने सामुदायिक निर्माण और क्षेत्र में सामाजिक परिवर्तन को प्रभावित किया। आइए इस संबंध में विस्तार से चर्चा करें। यदि असमी भाषा की कुछ शुरुआती पत्रिकाओं, जैसे-*जोनाकी* और *बहनी* (जो वर्ष 1890 के दशक से 1910 के दशक के बीच प्रका ित हुए) का अध्ययन किया जाए तो यह स्पष्ट हो जाता है कि भाषा के मानकीकरण और मुद्रण प्रौद्योगिकी को लोकप्रिय बनाने के कारण मिशनरियों के लिए लोगों के मन में बड़ा सम्मान था। हालांकि पत्रिकाओं में भाषा मानकीकरण तथा मुद्रण को लेकर जिस संदर्भ का इस्तेमाल किया गया था, वह ईसाई धर्म का प्रचार नहीं था। इसके बजाय ऐसा इसलिए था, क्योंकि दोनों ने प्रांत में राष्ट्रवाद को सहज बनाया। राष्ट्रीय पहचान एक नई अवधारणा थी, जो 19वीं शताब्दी में दक्षिण एशिया के कई हिस्सों में उभरी। असम प्रांत भी इसका अपवाद नहीं था। लेकिन असम के मामले में प्रमुख पत्रिकाओं ने राष्ट्रवाद की भावना के निर्माण में

मिशनरियों की भूमिका को स्वीकार करने में संकोच नहीं किया। इन पत्रिकाओं ने मिशनरियों द्वारा प्रकाशित विषयवस्तु को भी दर्शाया गया। उन्होंने नैतिक जीवन एवं आचार-व्यवहार के साथ-साथ विज्ञान एवं शिक्षा पर जो विभिन्न पुस्तिकाएं प्रकाशित की, उनकी सराहना आधुनिक विचारों एवं सोच के अग्रदूत के रूप में हुई। हम पहले ही इसका उल्लेख कर चुके हैं कि ऐसे अधिकतर विषयवस्तु अंग्रेजी से अनूदित थे। इन पत्रिकाओं में मिशनरियों के अनुवाद से संबंधित कार्यों को प्रका ान के लिए स्वीकार किया गया। पत्रिकाओं ने असमी भाषा एवं साहित्य के विकास के साथ-साथ सामाजिक परिवर्तन के लिए भी अंग्रेजी से असमी में अनुवाद का स्वागत किया।

जब हम असम में ब्रह्मपुत्र घाटी के आसपास के क्षेत्रों में अनुवाद, सामुदायिक निर्माण तथा सामाजिक परिवर्तन के संबंध पर विचार करते हैं तो हम पाते हैं कि प्रक्रिया की जटिलता अधिक विस्तृत है। उदाहरण के लिए, बैपटिस्ट मिशनरियों ने इस संबंध में पड़ोसी नगा पहाड़ियों में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। उनके कार्यक्रमों एवं गतिविधियों का परिणाम यह हुआ कि अधिकतर नागा लोगों ने 20वीं शताब्दी के मध्य तक न केवल अपने धर्म के रूप में ईसाई धर्म को अपनाया, बल्कि उन्होंने अपने रीति-रिवाजों में भी ईसाई धर्म के अनुसार काफी हद तक बदलाव किए। हालांकि, मिशनरियों ने जब नागा पहाड़ियों में काम करना शुरू किया था तो अधिकतर नगा लोग पढ़े-लिखे नहीं थे। इसलिए मिशनरियों के पास उन तक अपना संदेश पहुंचाने के लिए कोई प्रभावी लिखित माध्यम नहीं था। बाइबिल का प्रचार तथा स्कूल एवं कॉलेजों की स्थापना और आधुनिक शिक्षण संस्थाओं की स्थापना नागा पहाड़ियों में साथ-साथ हुई। नागालैंड में अंग्रेजी भाषा को आधिकारिक भाषा के रूप में स्वीकार किए जाने में मिशनरियों की महत्वपूर्ण भूमिका थी। तो क्या उस वक्त मिशनरियों ने ब्रह्मपुत्र घाटी में अपने मिशन कार्य व संचार के लिए अनुवाद का इस्तेमाल किया? मिशनरियों ने मौखिक (मौखिक संचार या धार्मिक उपदेश स्थानीय भाषा में दिया गया) एवं लिखित स्तर पर अनुवाद का इस्तेमाल किया। अंग्रेजी एक नई भाषा थी, जिसका इस्तेमाल उन्होंने अपने मिशन कार्यों के लिए किया। इसके अतिरिक्त, ईसाई धर्म ने नागा पहाड़ियों में सामुदायिक निर्माण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। 20वीं शताब्दी में नागा समुदाय के लोगों को 'नागा' पहचान के तले लाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाने वाले विभिन्न तथ्यों में से एक नया धर्म भी है। एक धर्म तथा आधुनिकीकरण के नाम पर विभिन्न नागा समुदायों के बीच संघ्र्ा को रोकना प्रभावी माध्यम बन गया है। इस प्रकार हम पाते हैं कि घाटी तथा पड़ोसी पहाड़ी क्षेत्र में अनुवाद की भूमिका अलग-अलग है। यह भी उल्लेखनीय है कि मिशनरी लोग अपने मिशन में घाटी की तुलना में पहाड़ी क्षेत्र में अधिक सफल रहीं। फिर भी एक समानता यह है कि अनुवाद ने प्रत्यक्षतः या अप्रत्यक्षतः सामुदायिक निर्माण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।

4.5 सारांश

इस इकाई में हमने पढ़ा कि विभिन्न मिशनरी किस प्रकार भारत आईं? मिशनरियों की गतिविधियों एवं ईस्ट इंडिया कंपनी की औपनिवेशिक नीतियों के बीच क्या और कैसे संबंध थे? ईस्ट इंडिया कंपनी किस प्रकार एक वक्त में मिशनरियों के खिलाफ हो गई थी। हमने उन विभिन्न भारतीय भाषाओं के बारे में भी पढ़ा, जिनमें मिशनरियों ने बाइबिल का अनुवाद कर तथा अन्य पुस्तिकाएँ प्रकाशित कर योगदान दिया। साथ ही हमने भारत के विभिन्न हिस्सों में मिशनरियों द्वारा स्थापित शुरुआती स्कूलों के बारे में भी पढ़ा और जाना कि किस प्रकार ईसाई धर्म के विस्तार ने भारतीय समाज में परिवर्तन लाया।

4.6 अभ्यास एवं बोध प्रश्न

1. भारत में ईसाई मिशनरी की शुरुआती समय के गतिविधियों की व्याख्या करें।
2. कुछ भारतीय भाषाओं में ईसाई मिशनरियों के योगदान की व्याख्या करें।
3. भारतीय भाषाओं के संदर्भ में ईसाई मिशनरियों के योगदान की व्याख्या करें।
4. भारत में मिशनरियों द्वारा स्थापित कुछ शुरुआती स्कूलों की सूची बनाएँ।
5. औपनिवेशिक भारत में मिशनरियों की गतिविधियों ने किस प्रकार सामुदायिक निर्माण को प्रभावित किया, इसकी व्याख्या करें।

4.7 शब्दावली

Proselytize : किसी को धर्म परिवर्तन करने के लिए प्रेरित करना।

Bapatist : बैपटिस्ट

Protestent : प्रोटेस्टेंट

Catholic : कैथोलिक

Prasbyterian : प्रैसबाइटीरियन

Phonetics : फोनेटिक्स

4.8 कुछ उपयोगी पुस्तकें

- Frykengerg, Robert and Low, Elaine. *Christian Missionaries in India: Cross Cultural Communication since 1500; with Special Reference to Caste, Conversion and Colonialism:* Wm.B. Erdmans Publishing Company, 2003.
- Naik, J. P. and Nurullah, Syed. *Student's History of Education in India (1800-1965),* New Delhi: Macmillan and Co, 1964.

इकाई 5 भारतीय दुभाषिए और ब्रिटिश सम्राज्य का निर्माण

इकाई की रूपरेखा

5.0 उद्देश्य

5.1 प्रस्तावना

5.2 ब्रिटिश साम्राज्यवाद और भारतीय दुभाषिए

5.2.1 भारतीय दुभाषिए और औपनिवेशिक सूचना संग्रहण

5.3 भारतीय व्याख्याकार और औपनिवेशिक कानून का निर्माण

5.4 भारतीय दुभाषिए और लोक साहित्य

5.5 सारांश

5.6 अभ्यास के लिए प्रश्न

5.7 शब्दावली

5.8 कुछ उपयोगी पुस्तकें

5.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप :

- ब्रिटिश साम्राज्य की स्थापना में भारतीय दुभाषियों की भूमिका को समझ सकेंगे;
- इस तर्क को रेखांकित कर सकेंगे कि भारत में साम्राज्य निर्माण की प्रक्रिया हमेशा साझा अनुभव रहा;
- यह समझ सकेंगे कि कैसे औपनिवेशिक जानकारी संचयन, स्वदेशी ज्ञान पद्धति तथा विजित लोगों पर शासन के मूल उद्देश्य तथा हितो की रक्षा से प्रेरित हो है;
- यह देखेंगे कि औपनिवेशिक कानून के निर्माण ने मुस्लिम व हिंदू विधि को कैसे भिन्न श्रेणियों में पहचाना और मूर्त्त रूप में देखा; तथा
- समझ सकेंगे कि कैसे स्थानीय अभिजात्यों ने स्वदेशी मुखबिरों के रूप में लोकसाहित्य से एक निश्चित प्रकार का ज्ञान प्रदर्शित किया?

5.1 प्रस्तावना

हम औपनिवेशिक अभिलेख की इकाई में देख चुके हैं कि ब्रिटिश साम्राज्य का निर्माण विभिनन विमर्शों के समूह द्वारा भारत को जानने पर आधारित था। भारत को जानकारी के विभिन्न रूपों और तरीकों से निर्मित और निरूपित किया गया। अतः न केवल प्राचीन भारतीय ग्रंथों का ज्ञान आवश्यक था अपितु सामाजिक प्रथाओं और परंपराओं को भी समझना आवश्यक था। इस तरह की जानने की प्रक्रियाएँ, प्रारंभिक तौर पर ब्रिटिश अधिकारियों द्वारा नियुक्त 'ज्योतिायिों, वैद्यों, पारस पत्थर के विशेषज्ञों, दाइयों' और अनेक भारतीय दुभाषियों के आधार पर निर्मित हुई (बेचली 1996ए 1)।

अंग्रेजी उपनिवेशक शासकों को भारत पर शासन करने के लिए स्थानीय लोगों से स्थानीय भाषा जानना जरूरी था भाषा न जानने की स्थिति में अनुवाद ही एक सहारा था। या फिर दूसरा रास्ता था कि जो लोग स्थानीय तथा बाहरी शासकों की भाषाएँ जानते थे ऐसे दुभाषिए इसमें सहायक हो सकते थे। इस प्रक्रिया में भारत में दुभाषियों का नया वर्ग सामने आया। स्वदेशी ज्ञान के वाहक और विश्वास पात्र के रूप में भारतीय दुभाषियों ने भारतीय ज्ञान को अनूदित व व्याख्यायित किया। इसके लिए स्वदेशी सहायकों द्वारा मौलिक भारत के रहस्यों को जानना

आवश्यक था जो अंग्रेजों के लिए ग्रंथों, बोली और संस्कृति को व्याख्यायित कर रहे थे। तथापि, सी.ए. बेचली के अनुसार अंग्रेजों ने भी इस प्रकार से उपलब्ध करवाई गई जानकारी को ''व्याख्यायित और गलत व्याख्यायित'' किया। यह इकाई ब्रिटिश साम्राज्य के निर्माण में विभिन्न भारतीय दुभाषियों की भूमिका पर प्रकाश डालेगी। वे न केवल ऐसी जानकारी संग्रह करने में सहायक सिद्ध हुए, जिससे साम्राज्य को सुदृढ़ करने में सहायता मिली, अपितु वे औपनिवेशिक कानून तथा नीतियों के निर्माण में भी सहायक सिद्ध हुए।

5.2 ब्रिटिश साम्राज्यवाद और भारतीय दुभाषिए

भारतीय दुभाषियों ने औपनिवेशिक शासन के विभिन्न चरणों में अलग-अलग भूमिकाएँ निभाई। फिर भी राजनीतिक सम्पर्क के शुरुआती चरण में ही स्वदेशी सूचना पर औपनिवेशिक निर्भरता दिखाई देती है। जैसे-जैसे साम्राज्य ने अपने शासन को सुदृढ़ किया, वैसे-वैसे मूल-निवासियों को और अच्छी तरह शासित करने के लिए जानकारी के नए तरीकों की आवश्यकता पड़ी। ईस्ट इंडिया कम्पनी के काल में बहुत से भारतीय अंग्रेजों के लिए व्याख्या की प्रक्रिया में संलग्न थे। इस चरण में व्याख्या की आवश्यकता मूल रूप से ब्रिटिश और स्वदेशी शासकों के अतिरिक्त व्यापारिक आदान-प्रदान की प्रक्रिया से जुड़े अधिकारियों के मध्य सम्प्रेषण के उद्देश्य को पूरा करने के लिए थी। कम्पनी से 'क्राउन' (राज ाही) के मध्य शक्ति के हस्तांतरण के साथ ही विनियोजन की शर्तें भी बदल गईं। हालांकि कम्पनी शासन में भी मूल निवासियों को समझने की जरूरत हमेशा अंतर्निहित थी, किंतु यह साम्राज्य के सीधे शासन में आने से और व्यवस्थित तथा विस्तृत हुई। जैसा कि हम अगली इकाई में देखेंगे कि औपनिवेशिक अभिलेख के तंत्र ने बाद में स्थानीय दुभाषिए के योगदान का मूल्यांकन उसे कम करने का प्रयास किया और इस प्रकार मूल इतिहास को मिटाने व स्वयं को इतिहास रचयिता के रूप में स्थापित करने का प्रयत्न किया। इन परिवर्तनों के परिप्रेक्ष्य में इस इकाई में हम प्रारम्भिक औपनिवेशिक इतिहास लेखनों में निकोलस बी. डर्क्स द्वारा कथित 'द्वैधवृत्ति' और 'विरोधों' पर चर्चा करेंगे। कहने का तात्पर्य यह है कि यद्यपि औपनिवेशिक ज्ञान उत्पादन के प्रारंभिक काल में औपनिविे ाक इतिहास लेखन, क्षेत्रीय सूचनाकारों पर अत्याधिक निर्भर था, तब भी औपनिवेशिक इतिहास ''स्थायित्व के भ्रम के रूप में औपनिवेशीकरण सम्भव करने वाली राजनैतिक सफलताओं से असुरक्षित'' था। हमें यहाँ यह ध्यान रखना चाहिए कि चाहे स्वदेशी व्याख्याकारों पर निर्भरता पर वशीकरण पा लिया गया हो तब भी औपनिवेशिक ज्ञान स्वदेशी सहायकों पर निर्भर रहना जारी रहा।

ईस्ट इंडिया कम्पनी के समय से ही भारतीय दुभाषियों की अत्याधिक आवश्यकता अनुभव की गई। कम्पनी का 17वीं तथा 18वीं शताब्दी का रिकार्ड मात्र व्यापारिक और राजनीतिक जानकारी का ही विवरण नहीं रखता अपितु कम्पनी द्वारा विविध प्रयोजनों के लिए नियुक्त क्षेत्रीय अधिकारियों के नाम भी रखता है। क्षेत्रीय अधिकारी बनिया, दलाल, दुभाषिए, गुमाश्ता, पंण्डित, श्रॉफ, वकील जैसे विविध नामों से पंजी त थे। ये सभी विशिष्ट ज्ञान रखते थे। कुछ क्षेत्रीय व्यापार की विस्तृत जानकारी रखते थे, जैसे कौन-सी जगहों पर किस प्रकार के उत्पाद मिलेंगे तथा वे 'तंत्र' या माध्यम जिनके द्वारा वस्तुएं खरीदी व वितरित की जा सकती थीं। दूसरे अधिकारी देशीय राज्य के तरीकों व नियमों की जानकारी रखते थे। ब्रिटिश अधिकारियों के लिए उन नियमों के अनुरूप व्यवहार करना आवश्यक था, क्योंकि वे सुरक्षा के लिए स्थानीय शासकों पर निर्भर थे।

ये सभी अधिकारी 'बहुभाषिक' थे तथा यूरोपियनों व भारतीयों के बीच सम्प्रेाण में एक सुविधाजनक माध्यम के रूप में उभरे थे। दुभाषी का शाब्दिक अर्थ ''दो भाषाएँ'' होता है। कोरोमण्डल तट पर दुभाषिए अनुवादक के रूप में कार्य करते थे। अखुंद का कार्य फारसी ग्रंथों को संघटित करना, लिखना और अनुवाद करना था। वह 'मुहम्मदन स्कूल शिक्षक' के रूप में भी जाना जाता था तथा कम्पनी के मुगलों से राजनयिक व राजनीतिक सम्बन्ध बनाए रखनें के साधनों में प्रमुख था। वकील न केवल फारसी का ज्ञान रखते थे अपितु दरबार की औपचारिकताओं और शासकों के व्यक्तित्व की भी जानकारी रखते थे। वे ब्रिटिशों के कानूनी सलाहकार के रूप में कार्य करते थे जिन्हें निरन्तर मुगलों के साथ समझौते करने पड़ते थे। (कॉन, 2007, 16-18)

फिर भी भारतीय दुभाषिए दस्तावेजों अनुबंधों या नियम और कानून के मात्र शाब्दिक अनुवादक के रूप में नहीं कार्य करते थे। भारतीय और अंग्रेजों के संसारों के बीच एक विशाल सांस्कृतिक अंतर था जिससे गलत व्याख्या की बहुत संभावनाएँ थीं। इस प्रकार के परिदृश्य में भारतीय अधिकारियों को सांस्कृतिक अनुवाद का कार्य भी

करना पड़ा। जैसा कि कॉन ने उल्लेख किया है कि सत्रहवीं शताब्दी में ब्रिटिश दृटिकोण, उनकी व्यापारिक रुचियों के अनुसार बहुत ही अतिरंजित था। इसलिए वे सभी चीजों को उसके 'मूल्य' के अनुरूप निर्धारित करते थे। कॉन यह भी रेखांकित करते हैं सत्रहवीं शताब्दी में यूरोपीय लोग 'चिह्नों' के माध्यम से विश्व की व्याख्या करते थे जबकि भारतीयों के लिए वस्तुओं का तात्विक मूल्य था। उदाहरण के लिए, ब्रिटिश उपहार या भेंट को अपने सम्बन्ध दृढ़ करने के साधन के रूप में देखते थे। उनके लिए कपड़े एक 'उपयोगितावादी वस्तु' थे, जबकि भारतीयों के लिए पहनावा, आभूषण, रीति-रिवाज इत्यादि सामाजिक सांस्कृतिक क्रम में महत्व रखते थे और इस प्रकार वे तात्विक थे। कहने का तात्पर्य यह है कि वे अस्मिता, रिवाज और परम्परा के सक्रिय निर्माण में संलिप्त थे। कॉन उदाहरण देते हैं कि कैसे एक मुगल शासक द्वारा जारी फरमान या परवाना अपने जारी होने के कार्य में ही, अंग्रेजों के सत्ता में एक भागीदार के रूप में आने का सूचक है। तब फरमान केवल एक आदेश नहीं है अपितु सत्ता के कुछ सम्बन्ध भी अभिव्यक्त करता है।

18वीं शताब्दी के सम्बन्ध में कॉलिन मैकेंजी ने जब मैसूर सर्वे की शुरुआत की तब वे क्षेत्रीय सहायकों और मुखबिरों पर अत्यधिक निर्भर थे जो कि अधिकतर ब्राह्मण थे। विभिन्न क्षेत्रों में सर्वेक्षक की अपनी भूमिका में मैकेंजी ने स्वदेशी लोगों के जीवन में सीधे और आक्रामक प्रवे ा का हमेशा विरोध किया। उदाहरण के लिए जनगणना कार्य को वे 'हिन्दू मत के अनुसार' क्रियान्वित करने का सुझाव देते हैं, जिससे कि स्वदेशी लोगों में इसके प्रति विरोध उत्पन्न न हो। इसके लिए स्थानीय संस्कृति और परम्परा के गहरे ज्ञान की आवश्यकता थी, जो केवल स्वदेशी लोगों द्वारा उपलब्ध कराया जा सकता था। यह 'मैत्रीपूर्ण मानदंडों' के अनुसरण करने और 'अति बुद्धिमान स्वदेशी लोगों' को नियुक्त करने द्वारा ही संभव था कि वे अपने सर्वे को सफलतापूर्वक सम्पन्न कर पाए। सहायकों का प्रयोग स्थानीय लोगों को सम्मत करने के लिए किया गया ताकि लोग अपनी संस्कृति और इतिहास में सन्निहित ज्ञान के विविध रूपों को उपलब्ध कराएँ।

1772 ई. में वारेन हेस्टिंग के समय में बंगाल में बेहतर सरकार बनाने की योजना प्रारम्भ की गई। इसके लिए प्राचीन भारतीय कानूनों की जानकारी आवश्यक थी। यद्यपि पहले से ही नियम ग्रंथों के विनियोजन और अनुवाद उपलब्ध थे तथापि हेस्टिंग के समय में ही एक योजनाबद्ध प्रयास किया गया। इस पर अगले भाग में विस्तृत चर्चा की जाएगी।

कंपनी के समय से ही अनुवाद और भाषांतरण के लिए स्वदेशी अधिकारियों पर निर्भरता को बहुत बड़े दोष के रूप में देखा गया था। भारतीय भाषाओं का अध्ययन इस निर्भरता से पार पाने के मुख्य आधार के रूप में देखा गया। अगर फारसी दरबार में प्रयुक्त होने वाली राजनीति की भाषा थी, तो प्राचीन भारतीय नियम और ग्रंथ संस्कृत में थे। गिलक्रिस्ट द्वारा हिन्दोस्तानी को 'शासन की भाषा' के रूप में स्थापित किए जाने के पीछे स्थानीय लोगों से संबंध अनुक्रम को बनाए रखने का प्रमुख उद्देश्य था। (इसके बारे में हम अगली इकाई में विस्तार से चर्चा करेंगे)। इन सबके बाबजूद 1800 ई में फोर्ट विलियम कॉलेज की स्थापना के साथ भारतीय भाषाओं, परंपराओं और संस्थाओं के बारे में ज्ञान पाना और उसमें निष्णात स्तर तक बढ़ गया। इस महाविद्यालय का उद्देश्य ब्रिटिश अधिकारियों को मात्र कंपनी की नियमावली और अधिनियमों में ही प्र ाक्षित और शिक्षित करना नहीं था अपितु इसके साथ ही 'विदेशी जाति' पर शासन करने के लिए जरूरी उनके इतिहास, भाषा, साहित्य में भी उन्हें शिक्षित करना था। यह प्रशिक्षण विभिन्न भारतीय आचार्यों द्वारा दिया जाता था। कॉन ने सतर्क सिद्ध किया है कि शिक्षण संस्थाओं की स्थापना को अंग्रेज भारतीय अतीत को सुरक्षित रखने के केंद्र के रूप में देखते थे। ठीक वैसे ही जैसे कि यह अपने नियमों साहित्य तथा संस्थानों में निरूपित था। इस प्रकार के दृष्टिकोण ने ही कलकत्ता मदरसा और संस्कृत कॉलेज की स्थापना का रास्ता दिखाया, जो भारतीय ज्ञान प्रदान करने में विशेषज्ञता रखते थे।

5.2.1 भारतीय दुभाषिए और औपनिवेशिक सूचना संग्रहण

औपनिवेशिक राज्य सत्ता को अपने शासन और विजय के लिए सेना और राजनीतिक सूचना संग्रहण पर बहुत अधिक भरोसा करना पड़ता था। एक प्रभावी शासन के लिए औपनिवेशिक गुलामों की राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक क्रियाओं की प्रवृत्ति की पर्याप्त जानकारी रखना आवश्यक था। सी.ए. बेयली की किताब 'एम्पायर एण्ड

इंफॉर्मे ान' औपनिवेशिक काल के दौरान उदित होने वाली औपनिवेशिक राज्य के निगरानी और सामाजिक संप्रेषण तंत्र पर केंद्रित सबसे महत्वपूर्ण रचनाओं में से एक है। नई सूचना तकनीक को सामाजिक संघटन के एक प्रकार के रूप में लेने वाले मैनुअल कास्टल के विचारों को लेते हुए बेयली तर्क देते हैं कि 'ज्ञान स्वयं में एक समाजिक रचना है।' इससे उनका तात्पर्य है कि समाज के खास वर्गों के पास ज्ञान के विशिष्ट प्रकारों तक पहुंच थी और वे उसके भण्डार थे। इस प्रकार, राजनीतिक सिद्धांत के प्राचीन भारतीय ग्रंथ राजनीतिक सूचना की दो पद्धतियों का उल्लेख करते हैं जिन पर राजा निर्भर था। जहां ब्राह्मण 'अधिक परिष्कृत ज्ञान' को संग्रहित और सुरक्षित रखते थे वहीं राजा राज्य के भू-भाग से संबंधित गहरी जानकारी रखने वाले धावक, वनपाल और खोजी जैसे आम लोगों की 'अनौपचारिक' सूचनाओं पर भी निर्भर करता था।

बेयली का तर्क है कि औपनिवेशिक राज्य में जानकारी संग्रहण उपनिवेश पूर्व पद्धतियों पर हुआ और इस प्रकार वहां पर औपनिवेशिक जानकारी संग्रहण स्वदेशी ज्ञान पद्धति परस्पर व्यापन और व्याख्या थे। विशेष रूप से यह 1830 से पहले के काम में यथातथ्य था। 1830 के बाद सांख्यिकीय और आनुभूतिक जानकारी पर बढ़ते हुए जोर के कारण और अविश्वसनीय स्वदेशी के डर न भी अंग्रेजों को स्वयं स्थानीय देशी भाषा में विशेषज्ञता प्राप्त करने की ओर बढ़ाया और इस प्रकार जहां तक हो सकता था स्थानीय मध्यस्थता को कम करने का प्रयास किया गया। तथापि क्षेत्रीय मुखबिरों पर अत्यधिक निर्भरता के शुरुआती दिनों में भी औपनिवेशिक राज्य, बेयली द्वारा कथित, 'पुश्तैनी' और 'भावात्मक' जानकारी पर विश्वास नहीं कर सकता था। इसका कारण यह था कि पुश्तैनी जानकारी किसी विशिष्ट क्षेत्र के अभिजात्य और प्रभावशाली लोगों के ज्ञान से संबंधित है, जबकि भावात्मक ज्ञान नैतिक और धार्मिक समुदायों के विश्वासों और व्यवहारों में भागीदारी से अर्जित और उत्पन्न किया जाने वाला ज्ञान है।

इस संदर्भ में देखने की बात यह है कि जब अंग्रेज औपनिवेशिक राज्य, जीते हुए समाज से मिला तब सूचना तंत्र का क्या हुआ? औपनिवेशिक साम्राज्य के अधिकृत क्षेत्र को सुरक्षित रखने की दिशा में प्रदेश का स्वदेशी ज्ञान प्राप्त करने के लिए उन्हें क्षेत्रीय खबरियों पर निर्भर होना पड़ता था। खुफिया तंत्र प्रणाली का निर्माण करने का यह आबन्ध स्वदेशी ज्ञान को भेदने और उसमें जोड़-तोड़ की अपेक्षा रखता था। इस प्रकार ब्रिटिश शासन के शुरुआती दौर में भाषाविदों और अनुवादकों की भूमिका बहुत विशिष्ट और निर्णायक थी।

फिर भी, इसका अर्थ यह नहीं है कि जब क्षेत्रीय खबरिए अपने औपनिवेशिक मालिकों के लिए खबर जुटा रहे थे तब उन्हें वे सभी कुछ जानकारियाँ मुहैया करवा रहे थे। उपनिवेश साम्राज्य की यह कमजोरी तब सामने आई जब 1857 का विद्रोह हुआ। विद्रोह को रेखांकित करने वाले स्वदेशी खबरिया तंत्र की व्यवस्था ने औपनिवेशिक शासन व्यवस्था को आ चर्य में डाल दिया क्योंकि अंग्रेज अफसर ग्रामस्तर पर अभिजात्य वर्गों और दूसरे वंशानुगत नौकरों तथा मुखबिरों द्वारा उपलब्ध कराई गई सूचनाओं को मिलाने में असफल रहे।

उपनिवेश पूर्व भारतीय राज्यों का तंत्र गहरी संस्थापित सामाजिक एकीकरण परंपरा पर खड़ा था जो अधीनों के राजनीतिक व्यवहारों पर नजर रखता था और शक्तिशाली वर्ग द्वारा शक्ति के दुरुपयोग को नियंत्रित करता था। चूंकि ब्रिटिश भारत एक विशाल भू-भाग था इसलिए हमेशा एक स्थान से दूसरे स्थान को चलायमान सैनिक, पुरोहित, तीर्थयात्री, शादी-बारात और अभिजात्यों के माध्यम से जानकारी यात्र किया करती थी। उदाहरणार्थ, जॉन केय नामक कम्पनी इतिहासकार अपनी रचना 'हिस्ट्री ऑफ सेपोय म्यूटिनी' में भारतीय संप्रेषण स्वस्था की तेजी पर प्रका ा डालते हैं। यद्यपि जाति आधारित राजनीतिक अर्थव्यवस्था समाज को खंडित और बहुत ही स्तरित करती थी। किंतु केवल उच्च जातियों के मध्य विवाह-व्यवस्था की प्रथा ने उनके उपार्जित ज्ञान को उनकी अगली पीढ़ी के लिए संरक्षित और परिलक्षित किया। इसके अतिरिक्त भारतीय शासक को संपत्ति पर मजबूत पकड़ बनाए रखने और राजा के प्रति प्रजा की राजनीतिक निष्ठा बनाए रखने के लिए शक और व्यापारियों से प्राप्त व्यावहारिक सूचना पर आश्रित होना पड़ता था।

1200 ई. के बाद के समय में मुगलों ने आधिकारिक राजनीतिक विवरण देने की अधिक सुव्यवस्थित पद्धति प्रारंभ की और नियमित पोस्ट-स्टेशन की स्थापना की। अकबर के शासनकाल में प्रत्येक प्रान्त का अपना एक 'घटनाओं का अभिलेखी' होता था जिसे 'वाकिया निगार' या 'वाकिया नवीस' के नाम से जाना जाता था। प्रधान समाचार लेखक क्षेत्रीय समाचार पत्रों के अवलोकक के साथ-साथ गुप्तचर के तौर पर भी नियुक्त होता था जिसका कार्य

प्रान्तीय शासकों और आधिकारिक समाचार लेखकों की रिपोर्ट का निरीक्षण करना होता था। शासक संतों, ज्योतिषों और चिकित्सकों को उनके प्रमाणिक तौर पर उपलब्ध कराए जाने वाले 'गुप्त ज्ञान' के लिए संरक्षण दिया करते थे।

1765 में बंगाल का भू-राजस्व प्रबन्धन ब्रिटिशों द्वारा संभालने के बाद उनकी राजस्व प्रबंधन की भारतीय पद्धति और कूटनीति की जटिलताओं में अधिक पहुंच हो गई। जो भारतीय पहले मुगल दरबार में नियुक्त थे उन्हें अंग्रेजों ने मुखबिरों के रूप में और हरकारों, समाचार लेखकों तथा राजनैतिक सचिवों से प्राप्त सामग्रियों को मिलाने के लिए बहाल किया गया था अठारहवीं सती के अंत तक बहुत-सी जगहों पर नियमित डाक केंद्र स्थापित हो चुके थे और संदेश पहुँचाने के लिए स्वदेशी वाहकों का प्रयोग किया जाता था।

बेयली संकेत करते हैं कि जब एक बार विविध स्रोतों से जानकारी इकट्ठी हो जाती थी तब उसे भारतीय शासक ठीक उसी तरह व्यवस्थित करते थे जैसा कि बाद में बिटिश लोगों ने किया। इस प्रकार स्वदेशी शासकों ने धर्म और जाति जैसी श्रेणियों का अच्छा खासा प्रयोग किया जिन्हें बाद में ब्रिटिश शासन के अंतर्गत जनगणना की संस्था ने मूर्त रूप दिया और सवंर्धित किया।

5.3 भारतीय व्याख्याकार और औपनिवेशिक कानून का निर्माण

1757 ई. में प्लासी के युद्ध के पश्चात् ईस्ट इंडिया कम्पनी को संवैधानिक और विधिक तंत्र के समूह की आवश्यकता पड़ी जिससे कि वह अपने बढ़ते हुए राज्य पर शासन कर सके व उसके साथ समझौता कर सके। जैसा कि अपनी पुस्तक 'कोलोनियलिज्म एंड इट्स फॉर्म्स ऑफ नॉलेज' में बर्नार्ड कॉन व्याख्या करते हैं कि भारतीय परिस्थिति ने अंग्रेजों के सामने एक विलक्षण कठिनाई प्रस्तुत की। आयरलैंड, वेल्स और स्कॉटलैंड में औपनिवेशिक शासन को आगे बढ़ाने के लिए कुछ ही सीमित प्रकार के परिवर्तनों की आवश्यकता थी। इनके अतिरिक्त उत्तरी अमेरिका और कैरीबियन के उपनिवेशों में अधिकांशतः ग्रेट ब्रिटेन के जैसी ही राजनैतिक व कानूनी संस्थाएँ थी इसलिए अधिक समझौतों की आवश्यकता नहीं थी। भारत की स्थिति में यह बिल्कुल भिन्न था क्योंकि यहाँ की सामाजिक व सांस्कृतिक स्थिति भिन्न थी तथा राजस्व उगाहने तथा युद्ध करने के अधिकारों के साथ कंपनी ने धीरे-धीरे एक राज्य की तरह कार्य करना आरंभ कर दिया था।

1765 ई. में बंगाल दीवानी अधिकार की अनुमति ने अंग्रेजों को जिम्मेदार सरकार के बदले में भारतीय शासकों से अनुदान और राजस्व प्राप्त करने के लिए अधि त कर दिया। किंतु राजस्व के 'वसूलकर्त्ता और स्वामी' के रूप में कार्य करने के अधिकार को ईस्ट इंडिया कम्पनी के कोर्ट ऑफ डायरेक्टर्स ने एक त्रुटि के रूप में माना। उनका विश्वास था कि इस प्रकार का निकट जुड़ाव अंग्रेजी शासकों का 'धूर्त्त स्वदेशियों' की 'कलाओं' के प्रति संवेदनशील बना देगा जो उन्हें धोखा देने और भुगतान से बचने का प्रयास करेंगे। इसके बजाय बोर्ड ने सुझाव दिया कि अंग्रेज अधिकारी राजस्व संग्रहण की प्रक्रिया की केवल निगरानी करें। यहाँ से हम यह देखना भी प्रारंभ करते हैं कि भारतीयों पर सफलता पूर्वक शासन की बात आते ही अंग्रेज एक उलझन का सामना करते थे अर्थात् वे भारतीयों पर विश्वास नहीं करते किंतु उनकी विडम्बना यह थी कि इसके साथ ही उन्हें ऐसे भारतीयों की आवश्यकता भी थी जो भू-राजस्व के निर्धारण और वसूली में दक्ष हो।

एक अनजान देश में शासन स्थापित करने के लिए अंग्रेजों को प्रशासनिक कार्यों के लिए स्वदेशी भाषा के ज्ञान की आवश्यकता थी। 17वीं और 18वीं शताब्दी तक अंग्रेज प्राचीन भाषा 'संस्कृत' को एक गुप्त भाषा के रूप में मानते रहे जिसे केवल ब्राह्मण जाति के लोग ही जानते थे। 17वीं शताब्दी में यूरोपियनों खासकर कि कैथोलिक मिशनरियों ने संस्कृत सीखने के कई प्रयास किए, किंतु उनके प्रयास उतने सफल नहीं हुए। उदाहरण के लिए-जेम्स, फ्रेजर, जे.जेड., हॉवेल और एलेक्जेंडर डॉव संस्कृत सीखने के अपने प्रयासों में सफल नहीं हुए। संस्कृत ग्रंथों के अनुवाद ने भारतीय विधि के वर्गीकरण की नींव डाली। भारत में तीस वर्ष बिताने के पश्चात् जॉन जेड हॉवेल ने फारसी, बांग्ला और हिंदुस्तानी सीखी। 1756 ई. में सिराजुद्दौला के काल में उन्होंने 'घंटूशास्त्र' का अनुवाद किया जो बाद में 1767 ई. में प्रकाशित हुआ। पर दुर्भाग्यवश हॉवेल से पाण्डुलिपि के साथ-साथ उसका भारतीय रूपांतरण भी खा गया। हॉवे की कहानी यहीं समाप्त नहीं होती। उसने हिंदुओं के बारे में संदेही दृटिकोण रखने के लिए

अपने पूर्ववर्त्तियों की आलोचना करना जारी रखा। उसके पूर्ववर्ती अक्सर हिंदुओं को 'बेवकूफों और गँवारू मूर्तिपूजकों की जाति' कहते थे। हॉवेल ने आगे तर्क किया कि यह कैथोलिक मिशनरियों का फैलाया हुआ षडयंत्र था क्योंकि वे हिंदुओं का धर्म परिवर्तन करना चाहते थे।

1772 ई. की वॉरेन हेस्टिंग की योजना ने भारत के और भाषा को सीखने पर बल दिया। हेस्टिंग का शासन के बारे में मुख्य विचार था कि विधि के मामले में स्वदेशी भारतीयों को उनके अपने सिद्धांतों से शासित किया जाए। इसके परिणामस्वरूप, आपराधिक न्यायालयों में, विधि के मुख्य व्याख्याताओं के रूप में, काजी, मुफ्ती और मौलवी को नियुक्त किया गया तथा मूलरूप से विवाह, जाति के मुद्दों, उत्तराधिकार और धार्मिक मसलों पर विचार करने वाले दीवानी न्यायालयों में मुसलमानों के लिए कुरान के कानूनों तथा हिंदुओं के लिए 'घंटूशास्त्रों' से संदर्भ लिए गए। हेस्टिंग के कदम ने भारत में आधुनिक न्यायिक व्यवस्था के निर्माण की नींव डाली।

किंतु प्राचीन भारत में औपनिवेशिक कानूनों के आविर्भाव में पीटर वैन डेर वीर का संवादात्मक परिप्रेक्ष्य सिद्धांत का आद र्ा रोचक है। उनका तर्क है कि भारत को सनातन धर्म की भूमि के रूप में और ब्रिटेन को आधुनिक धर्मनिरपेक्ष की भूमि के रूप में प्रदर्शित करना, भारत को इतिहास से बाहर कर देता है और अंग्रेज इतिहास के एजेंट बन जाते हैं। सरल शब्दों में कहें तो, उनका अभिप्राय था कि यह ऐतिहासिक मिलन और मुठभेड़ कुल मिलाकर एक साझा औपनिवेशिक अनुभव उत्पन्न करता है। भारत और ब्रिटेन दोनों ने इस परस्पर प्रभाव से अपनी राष्ट्रीय संस्कृति विकसित की। पर साथ ही यह सदा एक दोतरफा प्रक्रिया होती है, इस प्रकार औपनिवेशिक कानून प्राचीन भारतीय संहिता और कुरान व अन्य धार्मिक ग्रंथों से बना था। किंतु कानून के नियम लागू करने की औपनिवेशिक मंशा और भारतीय लोगों के जीवन के विभिन्न क्षेत्रों को नियंत्रित करने वाले प्राचीन धर्मग्रंथों की उपलब्धता के मध्य साझा संबंधों के बिना पुजारी और मौलबियों की भूमिका संभव नहीं होती है।

हिंदू और मुसलमानों को उनके संबंधित धार्मिक कानूनों से शासित करने का विचार काफी हद तक हेस्टिंग की योजना में ही निहित था। उसने बंगाल में कई संन्यासी ब्राह्मणों को बुलाया और शास्त्रीय साहित्य के महत्वपूर्ण भागों को संग्रहित करने व अंग्रेजी में अनुवाद करने का कार्य एन.बी. हाल्हैड के विश्वस्त निरीक्षण में सौंपा। एन. बी. हाल्हैड एक सिविल सर्वेंट थे। हाल्हैड ने जिस तरीके से ग्रंथों का अनुवाद करवाया, वह आज गहन अध्ययन का व़िाय है। चूँकि उन्हें संस्कृत का सीमित ज्ञान था इसलिए उन्हें बांग्ला या हिंदुस्तानी में विमर्श करने के लिए पंडितों पर निर्भर रहना पड़ता था। ये जनसाधारण के बीच बातचीत के लिए सामान्य रूप से प्रयोग की जाने वाली भाषाएँ थीं। इसके बाद एक बंगाली मुसलमान मुंशी ने उन्हें फारसी में अनूदित किया और अंततः हाल्हैड ने उस फारसी अनुवाद को अंग्रेजी में अनुवाद किया। यह 1776 ई. में 'कोड ऑफ घंटु लॉ'; या 'ऑर्डिनॅन्स ऑफ द पंडित्स' नाम से प्रकाि ात हुआ। संस्कृत में मूल संग्रहित ग्रंथ 'विवादर्णावसेतू' नाम से जाना जाता था। यह ग्रंथ फारसी व संस्कृत में भी प्रचलन में था। किंतु इसका अंग्रेजी रूपांतरण ही 19वीं शताब्दी के आरंभिक भाग तक ईस्ट इंडिया कम्पनी के न्यायालयों में प्रयोग किया जाता रहा।

इस संदर्भ में एक और महत्वपूर्ण नाम विलियम जोन्स (1746-1749) का है। उन्होंने ऑक्सफोर्ड विश्वविद्यालय से फारसी और अरबी का अध्ययन किया था और 1783 में जज के रूप में नियुक्त हुए थे। उन्होंने अरबी व फारसी ग्रंथों का अंग्रेजी अनुवाद किया। बाद में वे संस्कृत सीखने की ओर आकर्षित हुए। संस्कृत सीखने के बाद उन्होंने अनूदित फारसी विधिक ग्रंथ को त्रुटिपूर्ण पाया। चूंकि अंग्रेज न्यायाधीश पूर्ण रूप से पंडितों और मौलबियों की व्याख्या पर निर्भर थे इसलिए उन्होंने अनुभव किया कि भारतीय व्याख्याकार प्राचीन लिपियों के पाठ्यपरक ज्ञान पर अपना एकाधिकार जता रहे थे। यद्यपि जोन्स अंग्रेजी विधिक व्यवस्था को प्राचीन हिंदू कानून से बेहतर मानते थे किंतु साथ ही उनका मत था कि उनकी कानून व्यवस्था शासित लोगों पर लागू नहीं की जा सकती। इससे बचने का एक ही रास्ता था कि अंग्रेज न्यायाधीशों को भारतीय व्याख्याकारों की व्याख्या के सूक्ष्म निरीक्षण में योग्य बनाया जाए।

जोन्स की मृत्यु के पश्चात् एच.टी. कोलब्रुक ने जोन्स के कार्य को जारी रखा। उन्होंने वह अंग्रेजी अनुवाद पूर्ण किया और 1798, कलकत्ता में 'द डाइजेस्ट ऑफ हिंदू लॉ ऑन कॉन्ट्रैक्ट्स एण्ड सक्सैशन' प्रकाशित की। हिंदुओं के प्राचीन अंकगणित सीखने में कोलब्रुक की रुचि उन्हें संस्कृत भाषा के अध्ययन की ओर ले गई। किंतु बाद

में उनकी रुचि प्राचीन गणित से हिंदू विचार, संस्कृति और कानून के अध्ययन में परिवर्तित हो गई। अंततः कोलब्रुक ने हिंदू कानून की व्याख्या करने का यूरोपीय विचार स्थापित किया। इसने उनके न्याय के प्रशासन में भारतीय-ब्रिटिश और ब्रिटिश विचार को व्यापक रूप में प्रभावित किया। इस प्रकार कोलब्रुक प्राचीन हिंदु ज्ञान के संपूर्ण क्षेत्र को संस्थापित करने में सफल रहे।

5.4 भारतीय दुभाषिए और लोकसाहित्य

विधि, राजस्व और प्राचीन ग्रंथों के अतिरिक्त अंग्रेजों ने देशी लोकसाहित्य के अध्ययन पर विशेष ध्यान दिया। जैसा कि हमने पहले ही चर्चा की थी कि 1857 के विद्रोह को औपनिवेशिक सूचना संग्रहण की विफलता माना गया। उनका विश्वास था कि किसानों द्वारा समर्थित विद्रोही गुप्त संदेशों और गूढ़ संकेतों में वार्तालाप करते थे। यह प्रायः 'मौखिक और सांकेतिक बातचीत के द्वारा किया जाता था। अर्थात् विद्रोह के संगठन के लिए विद्रोहियों के बीच कहानियाँ' लोक भाषाओं में प्रचारित की जाती थी। यह इस हद तक था कि ब्रिटिश अधिकारियों को कहानियों का अर्थ दुग्राह्य बना रहता था। इसने इस धारणा को बनाया एवं बढ़ाया कि भारत के लोगों को जानने के लिए 'लोकसाहित्य के ज्ञान की आवश्यकता है, क्योंकि अंग्रेजों के विपरीत भारतीय प्राचीन एवं परंपरागत रीति-रिवाजों से 'बंधे' हुए हैं।' उस समय के अन्य अनेक ब्रिटिश अधिकारियों के समान आर.सी. टेम्पल ने यह बताई कि स्थानीय लोकसाहित्य का ज्ञान स्थानीय ''सहानुभूति'' हासिल करने में समर्थ करेगा जो देश के शासन को अत्यधिक बढ़ाएगा। इस प्रकार, 1857 के बाद जनसाधारण, उनकी धारणाओं एवं स्थानीय रीति-रिवाजों को जानने में दिलचस्पी बढ़ी। यह धर्मग्रंथों के अनुवाद के पूर्व प्राच्यवादी चिन्तन से एक गहन परिवर्तन था।

इस संबंध में ग्लोरिया गुडविन रहेजा का मानना है कि स्वदेशी लोकोक्तियाँ प्रायः विशिष्ट सामाजिक-सांस्कृतिक संदर्भ के बिना व्याख्यायित होती थी, इसलिए उनके अर्थ औपनिवेशिक प्रशासनिक रिपोर्ट में निर्धारित थे। 'असंदर्भीकरण' की प्रक्रिया के अंतर्गत वे कहावतें तब जाति और ब्रिटिश औपनिवेशिक शासन पर सहमति-जन्य अवलोकन को दर्शाने के लिए प्रदर्शित की जाती थी। रहेजा के तर्क का एक पक्ष यह था कि मुख्यतः उच्च वर्ग से संबंध रखने वाले स्वदेशी व्याख्याकार इस तरह की रचना में सहायक थे।

उदाहरण के लिए, रिजली की 'द पीपुल ऑफ इंडिया' में वे जाति की सख्त प्र ति और इसके लिए लोगों की सहमति को रेखांकित करने वाली कहावतों को उद्धृत करते हैं। रहेजा सुझाव देती हैं कि इस तरह का परिदृश्य उच्चवर्ग के खबरियों की स्थिति को दृढ़ करता है। दूसरे शब्दों में कहें तो रिजली द्वारा संग्रहित कहावतें उन स्थानीय अभिजात्यों के द्वारा उपलब्ध कराई गई थी जो निहित स्वार्थ के लिए पदानुक्रमिक समाज बनाना चाहते थे जहाँ उनका उचित स्थान हो। इसके अतिरिक्त रहेजा कुछ उदाहरणों का उल्लेख किया है। जहाँ औपनिवेशिक अधिकारियों ने जातिप्रथा की मान्यता को चुनौती देने वाली लोकोक्तियाँ और लोककथाएँ मिलती है। वे तर्क देती हैं कि इस असंगति की व्याख्या करने का औपनिवेशिक अधिकारियों के पास एक ही तरीका था कि जाति के व्यवहार में आने से पहले के 'उत्तरजीवन' के रूप में इसे मान लेना। इसलिए विलियम क्रूक के साथ अनुवादक और सहायक के रूप में कार्य करने वाले पं. रामगरीब चौबे जब ब्राह्मण को दुसाध द्वारा पीटे जाने वाले एक गीत से परिचित होते हैं तब वे मतभेद को सम्मिलित करने वाली उसी परिकल्पना का सहारा लेते हैं, और इस प्रकार 'वर्तमान सामाजिक रूप पर विशेष रूप से स्थापित और जानबूझकर बनाई गई आलोचनात्मक व्याख्या' के रूप में इसके अध्ययन की संभावना से इंकार करते हैं (रहेजा-499)।

चौबे पर रहेजा के तर्क को दुहराते हुए साधना नौथानी अपनी पुस्तक 'इन क्वैस्ट ऑफ इंडियन फोकटेल्स : पंडित रामगरीब चौबे एण्ड विलियम क्रुक' (2009) में तर्क देती हैं कि रहेजा का दावा विलियम क्रुक के न जातीय वर्णन कार्य पर आधारित है। यह चौबे के विशिष्ट योगदान को व्यक्त करने में नाकाफी है। साधना नैथानी निम्न वर्ग, महिलाओं और उनके ऊपर हुए अत्याचार से जुड़े मुद्दे से संबंधित, पं. चौबे द्वारा एकत्रित और अनूदित बहुत-सी कथाओं की ओर संकेत करती हैं। इस प्रकार वे तर्क देती हैं कि उच्च वर्गों के प्रभुत्व के प्रतिनिधि होने के बावजूद पं. चौबे को उन्नीसवीं शताब्दी के सुधार के संदर्भ में समझा जाना चाहिए जिसमें जाति ओर महिलाओं से संबंधित मुद्दों ने केन्द्रीय स्थान ग्रहण कर लिया था। इन परस्पर विरोधी दृष्टिकोणों के बावजूद हमारे लिए यहां यह ध्यान

देना महत्वपूर्ण है कि औपनिवेशिक अधिकारियों ने जो अभिव्यक्ति एवं प्रस्तुत किए उसे स्वदेशी खबरियों की स्थिति ने कैसे और किस हद तक तोड़ा-मरोड़ा और प्रभावित किया।

1857 की स्वतंत्रता के संग्राम के बाद कुछ जातियाँ विद्रोह के लिए प्रवृत्त रूप की मान ली गई थी और उन्हें 'उपद्रवी' व 'अपराधी' के रूप में समझा गया। यह ध्यान रखना महत्वपूर्ण है कि 1871 तक 'इंडियन क्रिमिनल ट्राइब्स एक्ट' की भी स्थापना हो चुकी थी जो कुछ जनजातियों को अपराधियों के रूप में वर्गी त करता है। रहेजा दिखाती हैं कि कैसे गुज्जर, खराल और मिओं के संबंध में जातियों की हिंसक और विद्रोही प्रवृत्ति पर विशेष बल देने वाली लोकोक्तियों को विलियम क्रुक, ई.ए. डब्ल्यू. ओल्डहम और डेनजिल इबेटसन जैसे अधिकारियों ने चुना और उनकी प्रति ति तैयार की।

19वीं शताब्दी में भू-राजस्व पद्धति के विस्तार के बाद प्रायः भू-संपन्न वर्ग से खबरियों को चुना गया। अतः इस प्रकार एकत्रित जानकारी भी उच्च स्थान बनाए रखने की खबरियों की प्राथमिकता को प्रतिबिंबित करती है। रहेजा इस संभावना तक सुझाव देती हैं कि इस प्रकार की लोकोक्तियाँ स्थानीय अभिजात्यों ने 'लूट की जिम्मेदारी से बचने के माध्यम के रूप में चुनीं। जिसमें उन्होंने खुद सुरक्षा और सहायता उपलब्ध कराने के कुछ सदस्यों को यह काम करने के लिए बाध्य किया' (रहेजा, 502) इस प्रकार रहेजा हमें ऐसी परिस्थिति के प्रति सूचित करती हैं जिसमें कुछ भाषाएँ और मौखिक परंपराएँ व्याख्यायित की गई थी। ज्ञान के कुछ रूप जैसे स्थानीय अभिजात्यों द्वारा उपलब्ध कराए गए वैसे ही स्वदे ियों के रिवाज के निरूपक के रूप में प्रस्तुत किए गए।

5.5 सारांश

अब तक हमने जाना कि औपनिवेशिक सत्ता की स्थापना विभिन्न ब्रिटिश अधिकारियों के साथ व अंतर्गत काम करने वाले विभिन्न स्वदेशी खबरियों और सहायकों के बिना संभव नहीं थी। ये वे स्वदेशी थे जिन्होंने व्याख्या द्वारा अंग्रेजों को एक अज्ञात संसार से परिचित करवाया। राजस्व वसूली से लेकर विधि के संहिताकरण और लोकसाहित्य के अभिलेखन तक विभिन्न क्षेत्रों में अंग्रेजों को स्वदेशियों की आवश्यकता थी। अंग्रेजों द्वारा नियोजित स्वदेशी दुभाषिए प्रायः अभिजात्य वर्ग से संबंध रखते थे। व्याख्या अनुवाद की यह प्रक्रिया एक खास दृष्टिकोण के जन्म का कारण बनी जिसने अभिजात्य खबरियों को लाभ पहुंचाया। फिर भी इस तरह की व्याख्या की प्रक्रिया से उपार्जित जानकारी को तत्पश्चात् चयनपूर्वक भारतीयों के एक खास प्रकार के चित्रण के लिए प्रस्तुत और पुनर्उत्पादित किया गया जिसने औपनिवेशिक हित को पूरा किया।

5.6 अभ्यास के लिए प्रश्न

1. भारतीय दुभाषियों और औपनिवेशिकता में मध्य संबंध की व्याख्या करें।
2. स्वदेशी खबरियों या मुखविरों और औपनिवेशिक जानकारी संग्रहण के मध्य संबंध की व्याख्या कीजिए।
3. औपनिवेशिक कानून के निर्माण में भारतीय व्याख्याकारों की भूमिका की व्याख्या कीजिए।
4. लोकसाहित्य का संग्रहण और व्याख्या क्यों और कैसे औपनिवेशिक परियोजना के केन्द्र में थी? व्याख्या करें।

5.7 शब्दावली

असंदर्भीकरण : ग्लोरिया गुडविन रहेजा के अनुसार यह प्रक्रिया औपनिवेशिक प्रशासनिक रिपोर्ट और जनगणनाओं में बोली और मौखिक व त्तांत के पारंपरिक प्रयोग के खास संदर्भ को मिटाती है और इस प्रकार जाति और औपनिवेशिक शासन के लिए सामंजस्य की स्थिति को सुसाध्य बनाती है।

फरमान : राजाज्ञा।

मदरसा : एक संस्था जहां मुस्लिम धार्मिक ग्रंथ व्याख्यायित किए जाते हैं।

शास्त्र : मुख्यतः संस्कृत में लिखित प्राचीन हिंदू दाशर्निक ग्रंथ।

5.8 संदर्भ ग्रंथ

- बेयली सी.ए., *एम्पायर एण्ड इंफॉर्मेशन : इंटैलिजैंस गैदरिंग एण्ड सोशल कम्यूनिकेशन इन इंडिया,* 1780-1870, (1996), कैम्ब्रिज : कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस।
- बर्नाड कोह्न, *कोलोनियलिज्म एण्ड इट्स फॉर्म्स ऑफ नॉलेज : द ब्रिटिश इन इंडिया,* बर्नार्ड एस.कॉन., नई दिल्ली, ऑक्सफोर्ड यूनिवसिर्टी प्रेस।
- (संपा.) ब्रेकैनरिज कैरॉला ए. और पीटर वैन डेर वीर ''कोलोनियल हिस्ट्रीज एण्ड नेटिव इंफॉर्मेंट्स'' *निकोलस बी. डर्क्स, पर्सपैक्टिव्स ऑन साऊथ एशिया : ओरिएंटलिज्म एण्ड द पोस्ट कोलोनियल प्रिडिकौंट* (1994), नई दिल्ली ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस।
- फ्रांस पीटर (2001), *ऑक्सफोर्ड डिक ानरी टू ट्रांसलेशन स्टडीज,* नई दिल्ली : ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस।
- नैथानी साधना, *इन क्वैस्ट ऑफ इंडियन फोकटेल्स : पंडित रामगरीब चौबे एण्ड विलियम क्रुक,* (2009) हैदराबाद : ओरिएंट ब्लैकस्वान।
- रहेजा ग्लोरिया गुडविन *''कास्ट, कोलोनियलिज्म एण्ड द स्पीच ऑफ द कोलोनाइज्ड : इनटैक्स्चुआलाइजेशन एण्ड डिसिप्लिनरी कंट्रोल इन इंडिया''*, (1996) अमेरिकन एथनोलॉजिस्ट, खण्ड-23, क्रम-3 (अगस्त), पृ. 494-513, ब्लैकवैल।